R.N.I. No. 2321/57

ओ३म्

रजि. सं. MTR नं. 004/2022-24

अक्टूबर 2023

अंक 9

तपोभूमि

मासिक

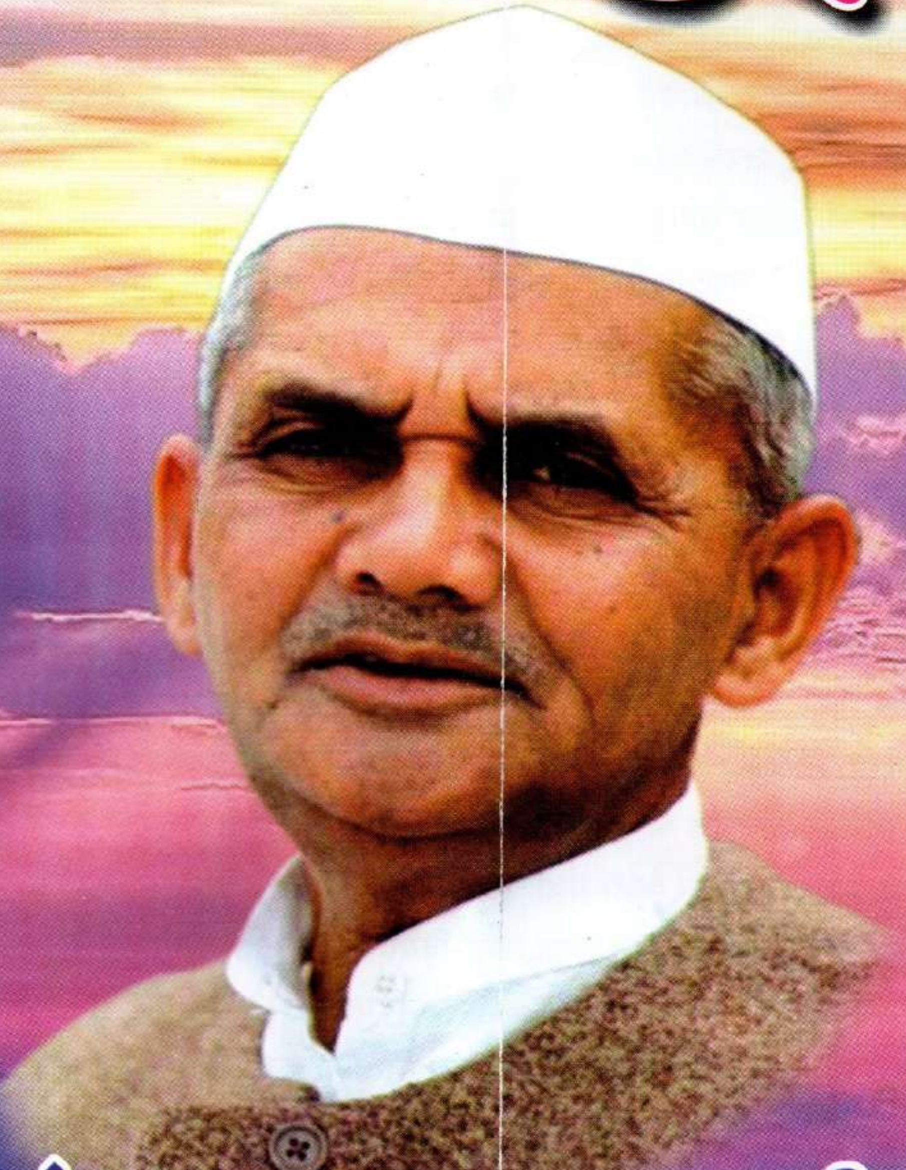

पं. लाल बहादुर शास्त्री

(1904–1966)

कार्यकाल – 09 जून 1964 से 11 जनवरी 1966

सम्पादकीय

सरलता की प्रतिमूर्त्ति थे श्री लाल बहादुर शास्त्री जी

पूर्व प्रधान मन्त्री भारत के गौरव माननीय श्री लाल बहादुर शास्त्री जी का नाम सुनते ही हर भारतीय का सिर उनकी सौम्यता के सामने झुक जाता है। अहंकार उन्हें छू तक नहीं पाया था उन्होंने निर्धनता देखी थी। इससे उनकी संवेदनशीलता निर्धनों के प्रति प्रधान मन्त्री बनने के बाद भी यथावत् रही। लेखक स्वयं एक बार स्वामी रामदेव जी महाराज के यहाँ पतंजलि पीठ में बैठा था अचानक एक सरल व्यक्तित्व सामने आकर उपस्थित हुआ। स्वामी रामदेव जी ने परिचय कराया कि हमारे राष्ट्र गौरव पूर्व प्रधान मन्त्री श्री लाल बहादुर जी के सुपुत्र श्री सुनील शास्त्री जी हैं। स्वामी रामदेव जी महाराज अत्यावश्यक कार्य से 1 घण्टे के लिए कहीं जा रहे थे उन्होंने कहा कि आप दोनों बातचीत करें। मैं शीघ्र ही कार्य से निवृत्त होकर आ रहा हूँ। जब माननीय शास्त्री जी के सुपुत्र हैं यह जानकर मेरे मन में कोतूहल जगा और मैंने श्री सुनील जी शास्त्री से कहा कि आप परम सौभाग्यशाली हैं जो आपको ऐसे पिता मिले। अब मैं आपसे माननीय शास्त्री जी अर्थात् आपके पिता के सम्बन्ध आपसे कुछ संस्मरण सुनना चाहता हूँ वे हँसते हुए बोले कि आचार्य जी आपको उत्सुकता है तो अवश्य सुनाऊँगा। उन्होंने संस्मरण बताते हुए कहा कि मैं पिताजी को बाबू जी कहता था जब प्रधान मन्त्री बनने के बाद आवास मिला तो उस आवास में बाबू जी का सामान व्यवस्थित करना था उन्होंने मुझसे कहा कि तू हमारा सामान कमरे में व्यवस्थित कर दे। मैंने बड़े परिश्रम से सारा सामान कमरे में व्यवस्थित कर दिया। शाम को जब बाबू जी आये तो मुझे अपने परिश्रम के लिए प्रशंसा की इच्छा की। मैंने कमरे में जाकर कहा बाबू जी सामान तो ठीक व्यवस्थित है। उन्होंने हँसते हुए कहा कि बेटा तुमने सामान बहुत उत्तम ढंग से लगाया है मैं प्रसन्न होकर चला गया। प्रातः विद्यालय जाने से पहले मैंने फिर बाल स्वभाव से कहा कि बाबू जी का कमरा हमने अच्छी तरह सजा दिया है तब उन्होंने मुझे बुलाकर कहा कि बेटा सब चीज ठीक है पर मेरा एक कुर्त्ता गायब है वह कहाँ रख दिया है। मैंने कहा कि बाबू जी मैंने माताजी को दे दिया था क्योंकि वह थोड़ा सा पीछे से फट गया था। माताजी कह रही थी पुराना हो गया मैं इसमें से रूमाल बना दूँगी फटा भाग अलग कर दूँगी। बाबूजी बोले नहीं बेटे अपनी माताजी से वह कुर्त्ता ले आओ। तब तक माताजी आ गईं उन्होंने कहा कि कुर्त्ता पीछे से हल्का सा क्षीण हो गया है। वह पहनने लायक नहीं है आप उसका क्या करेंगे। बाबूजी ने सहजभाव से हमारी माँ से कहा कि जहाँ तक हो सके अपरिग्रही रहना चाहिए। हमारे देश में करोड़ों लोगों पर वस्त्र ही नहीं हैं। एक जोड़ी कपड़े से ही काम

शेष पृष्ठ संख्या 35 पर

तपोभूमि

ओ३म् वयं जयेम (ऋक्0)

शारीरिक, आत्मिक और सामाजिक कल्याण की साधिका

(आर्य जगत में सर्वाधिक लोकप्रिय मासिक)

वर्ष–69 **संवत्सर 2080** **अक्टूबर 2023** **अंक 9**

*

संस्थापक
स्व0 आचार्य प्रेमभिक्षु

*

संपादक
आचार्य स्वदेश
मोबा. 9456811519

*

व्यवस्थापक
कन्हैयालाल आर्य
मोबा0 9759804182

*

अक्टूबर 2023

*

सृष्टि संवत्
1960853124

*

दयानन्दाब्द: 199

*

प्रकाशक
सत्य प्रकाशन, मथुरा

अनुक्रमणिका

लेख–कविता		पृष्ठ संख्या
वेदवाणी	–डॉ0 रामनाथ वेदालंकार	4–5
बज्रांगी हनुमान	–ओंकारसिंह विभाकर	6–9
वेद चतुष्टय	–हरिदत्त शास्त्री	10–13
मानव शरीर: कितना अद्भुत...	–योगाचार्य चन्द्रभान गुप्त	14–17
शल्य–चिकित्सा	–स्वामी ब्रह्ममुनि परिव्राजक	18–21
दान	–चिम्मनलाल वैश्य	22–26
आध्यात्मिक चर्चा	–हरिशंकर अग्निहोत्री	27–28
कर्म में नीति–अनीति का विचार	–आचार्य वैद्यनाथ शास्त्री	29–30
आर्यवीर उ0 प्र0 के आह्वान पर		31–34

वार्षिक शुल्क 200/– पन्द्रह वर्ष के लिये शुल्क 2100/–

वेदवाणी

लेखक: डॉ0 रामनाथ वेदालंकार

तीक्ष्ण आँख से राष्ट्र–यज्ञ की रक्षा कर

तीक्ष्णेनाग्ने चक्षुषा रक्ष यज्ञं प्राञ्चं वसुभ्यः प्र णय प्रचेतः।
हिंस्रं रक्षास्यभि शोशुचानं मा त्वा दभन्यातुधाना नृचक्षः।। –अथर्व0 8/3/9

शब्दार्थ:–

(अग्ने) हे अग्रणी , प्रगतिशील, तेजस्वी राजन् ! तू (तीक्ष्णेन चक्षुषा) तीक्ष्ण आँख से (यज्ञं रक्ष) राष्ट्रयज्ञ की रक्षा कर। (प्रचेतः) हे प्रकृष्ट चित्तवाले! तू (वसुभ्यः) राष्ट्रवासियों के लिए, राष्ट्र–यज्ञ को (प्राञ्चम्) अग्रगामी बनाकर (प्र नय) उत्कृष्ट दिशा में ले चल। (नृचक्षः) हे मनुष्यों पर दृष्टि रखनेवाले ! (हिंस्रम्) हिंसक, (रक्षांसि अभि शोशुचानम्) राक्षसों के प्रति अतिशय धधकनेवाले (त्वा) तुझे (यातुधानाः) यातना पहुँचाने वाले राक्षस (मा दभन्) हिंसित एवं पराजित न कर सकें।

भावार्थ:–

हे राजन् ! तेरा नाम 'अग्नि' है। निरुक्तकार ने अग्र–पूर्वकणीञ् प्रापणे धातु से 'अग्नि' की निष्पत्ति की है। तू राष्ट्र को आगे ले जाने के कारण अग्नि कहलाता है। उणादि में गत्यर्थक अग्नि धातु से नि प्रत्यय करके 'अग्नि' शब्द की सिद्धि की गयी है। प्रगतिशील होने के कारण भी तेरी अग्नि संज्ञा है। तू अग्नि के समान तेजस्वी, ऊर्ध्वगामी एवं कल्मषदाहक होने से भी अग्निपदवाच्य है। तू राष्ट्र–यज्ञ का ब्रह्मा है, जैसे यज्ञ का ब्रह्मा यज्ञ को सूक्ष्म दृष्टि से देखता रहता है और उसमें कोई त्रुटि नहीं होने देता, वैसे ही तू राष्ट्र–यज्ञ को तीक्ष्ण आँख से देखता हुआ उसकी रक्षा कर। राष्ट्र–यज्ञ के विविध आयाम हैं–शिक्षा, सैन्यसंगठन, न्यायव्यवस्था, शिल्प, कल–कारखाने, कृषि, पशुपालन, व्यापार, यातायात, विदेशनीति आदि। राष्ट्र–यज्ञ को तू इस रूप में चला कि वह इन सबमें अग्रगामी हो, अन्य राष्ट्रों की अपेक्षा समुन्नत हो। तू 'प्रचेताः' बनकर, प्रकृष्ट चित्तवाला होकर राष्ट्र को आगे ले चल। जो 'प्रचेताः' होते हैं, वे सदा सावधान और जागरूक रहते हैं। तू भी सावधान और जागरूक रहकर राष्ट्र–यज्ञ को सम्पूर्णता की ओर ले चल। तू राष्ट्र में वर्णव्यवस्था और आश्रमव्यवस्था का सुचारुरूप से संचालन कर। तू ऐसा प्रयत्न कर कि तेरे 'राष्ट्र में ब्रह्मवर्चस्वी ब्राह्मण हों; शूरवीर, आयुध चलाने में कुशल, धनुर्धर, शत्रु को विद्ध करनेवाले, महारथी क्षत्रिय हों; दुधार गौएँ हों; भारवाही बैल हों; शीघ्रगामी घोड़े हों; बुद्धिमती नारियाँ हों;

विजयशील, रथारोही, सभ्य, युवक, वीर यजमान पुत्र हों; जब-जब हम चाहें तब-तब बादल बरसें; फलवती औषधियाँ परिपक्व होती रहें, सदा हम सबका योगक्षेम होता रहे।

हे राजन्! जब तू राष्ट्र को उन्नति के चरम सोपान पर ले जाने के लिए उद्यम करेगा, तब इस कार्य में बाधा डालनेवाले शत्रुओं से भी तुझे लोहा लेना होगा। जो राक्षस बनकर तेरे राष्ट्रयज्ञ का विध्वंस करने के लिए उतारू होंगे, उनसे तुझे संग्राम करना होगा, उनकी हस्ती को मिटाना होगा, उनकी हिंसा करनी होगी, उनके प्रति तीव्र रुख रखनाह ेगा, आग की लपट बनकर उन्हें दग्ध करना होगा। जब तू उनके विरुद्ध युद्ध घोषित करेगा, तब वे भी तुझे पराजित करने में तत्पर होंगे, तेरे सैनिकों की, सेनाध्यक्षों की और तेरी हिंसा करना चाहेंगे। तू इसका ध्यान रख कि वे इस कार्य में सफल न होने पायें। उनका तू समूल उच्छेद कर दे, उनके विद्रोह को कुचल दे, उनके शस्त्रास्त्रों को खण्डित कर दे। बाधक शत्रुओं को उच्छिन्न करके ही तू राष्ट्र का उत्कर्ष कर सकेगा। ❁

तपोभूमि मासिक के पाठकों से विनम्र निवेदन

'तपोभूमि' मासिक पत्रिका प्रतिमाह आप तक पहुँच रही है। हमारा हर सम्भव प्रयास यही रहता है कि पत्रिका में उच्चकोटि के विद्वानों के सारगर्भित लेख प्रकाशित करके आर्यसमाज और महर्षि दयानन्द सरस्वती जी के सिद्धान्तों के अनुसार प्रचार करते हुये यह पत्रिका जन-जन तक पहुँचे। ताकि वे इसका पूर्णतया लाभ प्राप्त कर सकें। लेकिन यह तभी सम्भव है जब आप सबका सहयोग हमें मिले।

'तपोभूमि' मासिक के पाठको से निवेदन है कि जिन्होंने अपना वार्षिक शुल्क चालू वर्ष या पिछले वर्ष का शुल्क अभी तक नहीं भेजा है। वे शीघ्रातिशीघ्र शुल्क भिजवाने की व्यवस्था करें। वार्षिक शुल्क 200/- दो सौ रुपये तथा पन्द्रह वर्ष हेतु 2100/- दो हजार एक सौ रुपये भेजकर पत्रिका पढ़ने का लाभ उठायें।

हम आपको प्रति माह पत्रिका पहुँचाते रहेंगे। आपके सहयोग व हमारे परिश्रम से निरन्तरता बनी रहेगी और महर्षि दयानन्द सरस्वती जी व आर्यसमाज का प्रचार-प्रसार जन-जन तक भी होता रहेगा।

हमें अपने ग्राहक महानुभावों से यही अपेक्षा है कि बिना विघ्न कार्य सुचारू रूप से चलता रहे। साथ ही यह भी प्रार्थना है कि आप अपने परिश्रम से नवीन ग्राहक बनवाने का सौभाग्य प्राप्त करें।

-धनराशि भेजने हेतु बैंक का नाम व पता एवं खाता संख्या-

इण्डियन ओवरसीज बैंक

शाखा युग निर्माण योजना, गायत्री तपोभूमि, जयसिंहपुरा, मथुरा

I F S C Code- IOBA 0001441

'सत्य प्रकाशन' खाता संख्या- 144101000002341

दान देने हेतु- श्री विरजानन्द ट्रस्ट' खाता संख्या- 144101000000351

गतांक से आगे–

बज्रांगी हनुमान

(दशम् सर्ग)

लेखक: ओंकार सिंह 'विभाकर', उमरा हलियापुर, जिला–सुल्तानपुर (उ0 प्र0)

महावीर हैं लगे तोड़ने, रावण का अतिप्रिय उपवन।
देख राक्षसियों ने है पूछा, कौन, कहाँ के, हैं यह जन॥
तेरे साथ बात करता था? सिय बोली , तब छाया है।
'सांप पांव को सांप जानता' कहा, राक्षसी माया है॥

उपवन की विध्वंस सूचना, ज्यों रावण ने पाया है।
उसे पकड़े हेतु बड़े योद्धा को वहाँ पठाया है॥
अस्त्र – शस्त्रधारी योद्धागण, महावीर को धमकाया।
लखि व्यवहार राक्षसों का यह, निज तेजस्वी रूप दिखाया॥

अति महाबली श्रीराम की जय, औ महाबली लक्ष्मण की जय।
श्रीराम–मित्र सुग्रीव की जय, हुँकार भरा जय जय जय जय॥
बढ़ा राक्षसों का क्रोधानल, नाम–धाम अपना बतलाओ।
अरे कालवश, निर्भय हो तू, उपवन भीतर धूम मचाओ॥

कौशलेन्द्र श्रीराम –दास मैं, शत्रु सैन्य का हन्ता हूँ।
पवन पुत्र हनुमान नाम है, सहसों रावण जेता हूँ॥
तहस–नहस लंका का करके, माता सीता को प्रणाम कर।
सहस राक्षसों के सम्मुख ही, जाऊँगा मैं कार्य सिद्ध कर॥

राक्षस लौटे, रावण से मिल, बल–पौरुष बतलाया है।
उसे पकड़ने जम्बुमालि को, स्वयंदन सहित पठाया है॥
जम्बुमालि ने कहा, अरे तू क्यों उत्पात मचाया रे?
रावण से पूछो जाकरके, क्यों सीता हर लाया रे॥

वापस करदे सीता जी को, करे याचना चलकर।
क्षमा करें राम, कहायेगा फिर से लंकेश्वर॥

सुनि अपमान नृपति का अपने, अस्त्र-शस्त्र दे मारा था।
उठी गदा है महावीर की, सभी वार को टारा था॥

किया प्रहार जम्बुमालि पर, रथ से गिरा निहत्था था।
निकल गया है प्राण उसी क्षण, चूर हो गया मत्था था॥
पुत्र अनेक मंत्री के थे, युद्ध कला में निपुण धनुर्धर।
वे सब तुरत वाटिका में जा, करने लगे प्रहार निरंतर॥

बाणों की बौछार बचाकर, महावीर ने वार किया।
एक-एक करके सबको ही, सांय तक है मार दिया॥
मंत्री पुत्रों का वध सुनकर, रावण की चिन्ता बाढ़ी।
युद्ध विशारद-विद्वानों की, सभा बुलायी है गाढ़ी॥

जिसने इतना उग्र कर्म, है किया उसे जाकर बांधो।
पर सामान्य नहीं वह वानर, देश-काल को भी साधो॥
मैंने बड़े - बड़े बलधारी, पुरुष वानरों में देखे हैं।
बाली-जाम्बवान-सुग्रीव-नील-द्विबिद, के बल देखे हैं॥

तेज - पराक्रम - बल - गति - उत्साह और लावण्य।
सभी समन्वित गुण हैं इसमें, देखा नहीं किसी में अन्य॥
इसे बड़ी सत्ता वाला अरु, महा शक्तिशाली जानो।
करो प्रयत्न पकड़ने का ही, इसे असाधारण मानो॥

सुर-नर-असुर तुम्हारे आगे, रण में ठहर नहीं सकते।
नीतिमान-जय के अभिलाषी, ध्यान सदा स्वरक्षा करते॥
राजा की आज्ञा को पाकर, अगणित योद्धाओं के साथ।
विरुपाक्ष पांचो सेनापति, अस्त्र-शस्त्र लेकर सब साथ॥

वहां पहुँच सब एक साथ मिल, अविरल करने लगे प्रहार।
महावीर सह रहे निरन्तर, देखा अधिक क्रूर का वार॥
गरजे महावीर तेजस्वी, राक्षसों पर टूट पड़े हैं।
थप्पड़ मारा गिरे भीति सम, मुक्के मारा मरे पड़े हैं॥

बहुतों को कुचला पैरों से, बहुतों को नख से फाड़ दिया।
कुछ को छाती से रगड़-रगड़, उनका कचूमर निकाल दिया॥

बहुतों को जांघों में दबोच, पेरा गन्ना सा बना दिया।
बहुतों को घोर गर्जना से, पूरी बगिया में सुला दिया॥

जब मरे पांच सेनापति हैं, अक्षकुमार सुवन आया।
महावीर ने उन्हें वहाँ ही, दल समेत यमपुरी पठाया॥
विस्मित बहुत दुखी हो रावण, इन्द्रजीत को बुलवाया।
वीर! सभी में अनुपम योद्धा, भुजबल में अद्वितीय काया॥

देश-काल का तुम्हें ज्ञान है, शीघ्र पकड़ लाओ वानर।
'मेरा क्या वश' नहीं सोचना, मार दिये अगणित चाकर॥
राजधर्म - क्षत्रियधर्म की, नीति सदा बतलाती है।
शास्त्र निपुणता-विजय कामना, रण सहयोग कराती है॥

रथ पर चढ़कर अस्त्र-शस्त्र युत, मेघनाद तब आया है।
तुरत भिड़ गया महावीर से, विकट युद्ध करवाया है॥
मनोवेग से युद्ध कुशलता, महावीर ने दिखलायी है।
मेघनाद को हुआ है निश्चय, जीतूँ नहीं लड़ायी है॥

मेघनाद ने तब सुदूर से, एक अस्त्र है फेंक दिया।
बन्धन में फंस गये तुरत वे, पृथिवी गिरे अचेत किया॥
हुई चेतना उनको ज्यों ही, तुरत उन्होंने माना था।
मुझे पकड़कर राक्षसेन्द्र के, पास हो गया जाना था॥

इसी बहाने राजसभा में, मैं संवाद करूंगा।
उसकी सारी रीति-नीति का, विधिवत् ज्ञान करूंगा॥
सभा लगी थी लंकापति की, हनूमान को लाये थे।
वहाँ पहुँचकर देखा सारे, राक्षस बूढ़े आये थे॥

सज-धजकर रावण बैठा है, राज सिंहासन के ऊपर।
उसने देखा महावीर को, चिन्ता हुई अधिक भीतर॥
लगा सोचने मन ही मन में, बड़ा भयंकर वानर है।
किया तर्क बहु अन्तर्मन में, वाणी किया उजागर है॥

सुनो प्रहस्त ! इसी से पूँछो, लंका में क्यों आया है।
कहाँ से आया, काम कौन उपवन मेरा नशाया है॥

इसने मेरे राक्षस वीरों, को हठात् क्यों मार दिया।
स्वर्णिम लंका में आकरके, अपने काल को काल किया॥

कहा प्रहस्त ! सुनो हे वानर, निर्भय होकर सत्य बताओ।
तुझे इन्द्र ने यहाँ पठाया विजय हेतु विष्णु भिजवाओ॥
या कुबेर-यम-वरुण दूत हो, साँची साँची बात कहो।
तुमको छोड़ दिया जायेगा, तेरा जीवन दुलभ न हो॥

तू किस लिये यहाँ आया है, साँची साँची तुरत बता।
मन्त्री का सुन वचन है बोले, हनुमान जी सुनो पता॥
मैं न इन्द्र-यम-वरुण दूत हूँ, मैत्री नहीं कुबेर से।
नहीं विष्णु ने मुझको भेजा, दर्शन मिला अबेर से॥

राक्षसेन्द्र का दर्शन पाऊँ, उपवन नाश किया मैंने।
वानर जाति, गये जब योधा, रक्षा हेतु किया रण मैंने॥
कौशलेन्द्र श्री राम चन्द्र का स्वामिभक्त मैं दूत हूँ।
ऋषि अगस्त्य का शिष्य और मैं 'पवन केसरी' पूत हूँ॥

इतना सुनते राक्षसेन्द्र ने, ऊपर से नीचे तक देखा।
उसके मस्तक पर छायी है, आश्चर्य विस्मय की रेखा॥
कहा, रत्नपुर के राजा हैं, 'पवन केसरी' वानर श्रेष्ठ।
उनके पुत्र यशस्वी तुम हो महावीर हनुमान यथेष्ठ॥

तुम हो मेरे मित्र वर्ग के, मिला सदा पौरुष सहयोग।
हमने जीता है कुबेर को, पुष्पक लिया, तुम्हारा योग॥
कहो यहाँ इस रूप में कैसे, पुत्र नहीं तुम पौत्र तुल्य हो।
विस्तृत सारी कथा बतायी, जिससे आजीवन अमूल्य हो॥

फैली है आसुरी सभ्यता, चहुँ दिशि असुरों का अन्याय।
ऋषि-मुनि पीड़ित किये जा रहे, बामाचार, तिरोहित न्याय॥
भौतिकता-अध्यात्म समन्वित, वैदिक संस्कृति ध्वज फहरायें।
बसुन्धरा में इसी लक्ष्य से, हम भी अपना कदम बढ़ायें॥

-(शेष अगले अंक में)

गतांक से आगे–

वेद चतुष्टय

लेखकः हरिदत्त शास्त्री, सिरसागंज, जिला–फिरोजाबाद (उ0 प्र0)

जिस गर्भ के समान संसार को धारण करने वाले, प्रकृति को धारण करने वाले आप जन्मादि दोष रहित भली–भाँति प्राप्त होते हैं। उस प्रकृति के कर्ता–धर्ता आपको मैं अच्छी प्रकार जानू–समझू और मानू।

पौराणिकों के अनुसार– **''गणानां त्वां गणपति हवामहे''** इस यजुर्वेद के मन्त्र को गणेश पूजन में प्रयुक्त करते हैं। किसी घर में जब कोई मांगलिक आयोजन होता है उस समय में ''नव ग्रह'' शान्ति के लिए, गणेश पूजन में– **''गणानां त्वां–''** इस मन्त्र का प्रयोग किया जाता है। पौराणिकों का विचार है कि गणेश देव विघ्न हरण कारक, मंगल कारक और बुद्धि प्रदाता हैं। किसी प्रकार का कोई विघ्न न हो इस निमित्त– **''गणानां त्वां''** इस मन्त्र का पाठ द्वारा स्मरण किया जाता है तथा अक्षत्, चावल बिखेरे जाते हैं।

''गणानां त्वां'' इस वेद मन्त्र का अर्थ महीधर ने घोड़ा किया है। यह अर्थ महीधर का उल्टे अर्थ में है– महीधर का विचार है कि ''यज्ञोपरान्त ऋत्विजों के सामने यजमान की पत्नी घोड़े के पास सोवे और स्वयं सोती हुई, घोड़े से कहे कि हे अश्व ! जिससे गर्भ धारण होता है, ऐसा जो तेरा वीर्य है, उसको मैं अपनी योनि में डालूँ, तू उस वीर्य को मुझ में स्थापित करने वाला है।

विचारने योग्य बात यह है कि ''महीधर का अर्थ स्त्री और अश्व के बीच शारीरिक सम्पर्क कराना सष्टिक्रम के विपरीत है, यह अश्व और स्त्री के साथ शारीरिक सम्पर्क कराना कितना गन्दा और अश्लील है। यह स्त्री और पशु के बीच अव्यावहारिक और व्यभिचार से युक्त है। इस प्रकार वेद मन्त्रों के अर्थ करके महा मूर्खता प्रदर्शित करना ही है। इस अर्थ से वाममार्ग की अश्लीलता, व्यभिचार और दुष्प्रवृत्ति को बढ़ावा मिलता है। इस प्रकार के अर्थों से वास्तविकता कलंकित होती है।

सुना जाता है कि उत्तर प्रदेश में गोरखपुर का एक राजा था। उसने पोपों से यज्ञ कराया था। राजा की प्रिय रानी का समागम घोड़े के साथ कराने से उसकी मृत्यु हो गई। रानी की मृत्यु के उपरान्त राजा वैराग्यवान होकर अपने पुत्र को राज सौंपकर, साधु हो गया, तब पोपों की पोल खोलने लगा। इसी की शाखा रूप चारवाक् और आभाणक सम्प्रदाय बने।

वेदमन्त्रों के इसी अनर्थ को पढ़कर विद्वान् जन कहते हैं कि– ''अयोग्य व्यक्ति से वेद डरता है–कि मूढ़ व्यक्ति मुझ पर प्रहार करेगा। जैसा कि आजकल चल रहा है। वेद के सब शब्द वैदिक धातुओं से बने हैं। वैदिक धातुओं को समझ कर, वेद का अर्थ करना चाहिए। वेद के इस मन्त्र का अर्थ समझना है। सही

रीति से इसका प्रयोग करना है। यह मन्त्र **"नव ग्रह शान्ति"** के लिए नहीं है। और गणेश पूजन में इस मन्त्र का प्रयोग नहीं करना है। अश्व और स्त्री सम्पर्क के लिए भी यह मन्त्र नहीं है। इस मन्त्र का वास्तविक अर्थ जानिए। मन्त्र का अर्थ इस प्रकार है। **"गणानां त्वा गणपतिँ हवामहे प्रियाणां त्वा प्रियपतिँ हवामहे-"** यह परमपिता परमात्मा गणना किये जाने वाले पदार्थों का स्वामी है। और जीवों का पालन करने वाला है। हमारा व मनुष्यों का कर्त्तव्य है कि सत्कार, सम्मान, पूजनीय ईश्वर को बुद्धिपूर्वक ग्रहण करते रहें। जो संसार के प्रिय मानव हैं, भक्ति युक्त सुखदायक, मोक्षप्रदाता परमात्मा प्रियतम स्वामी है। सच्चिदानन्द स्वरूप परमात्मा आनन्द देने वाला है। तथा सब संसार का पालनकर्त्ता है। उस साक्षात्कार करने योग्य परमात्मा की उपासना नित्य प्रति करनी है। वह सुख का तथा विद्या एवं निधियों, धन सम्पत्ति, ऐश्वर्य को देने वाला है। वह परमात्मा सम्पूर्ण संसार का स्वामी है। वह सर्वव्यापक ईश्वर सर्वत्र विद्यमान है वह सबको धारण करने वाला है। सम्पूर्ण पदार्थों की रचना करने वाला परमात्मा ही है। आप गुणों के धाम हैं। आप सब कुछ जानते हैं। आप ही ज्ञान-प्रदाता हैं। आप के गर्भ में सम्पूर्ण सृष्टि है। आप ही सृजनकर्त्ता, धर्ता और आप ही हर्ता हैं।

(4)

ओउम्- अग्न आ याहिवीतये गृणानो हव्य दातये। नि होता सत्सि बर्हिषि॥

सामवेद पूर्वार्चिक आग्नेय काण्डम् प्रथम अध्याय 1।1।1 प्रथम खण्ड॥

(ऋषिः- भारद्वाजः, देवता-अग्निः, छन्दः गायत्री, स्वरः- षड्जः)।

आदित्य ऋषि द्वारा सामवेद का प्रकाशन- सामवेद का प्रथम मन्त्र- ज्योति स्वरूप परमात्मा का वर्णन है।

भावार्थ- मैं उस आदित्य की स्तुति करता हूँ। जो परमात्मा ज्ञान के लिए प्रशंसित है। चित्त की एकाग्रता के लिए, जीवन में गति देने के लिए, सब कार्यों में सद्गुण देने के लिए, सुपथ प्रदान करने के लिए भक्ति-दान के लिए, यज्ञादि शुभ कर्मों के लिए, आदित्यादि शक्ति प्रदाता हमारे हृदयों में स्थित अर्थात् विराजमान हो जाइये। हे अग्नि तू हम को वेद वाणी का दान करने के लिए आ। यहाँ अग्नि नाम सूर्य अर्थात् आदित्य का है। जिस पर सामवेद प्रकट हुआ, उसका नाम आदित्य है। अग्नि ऋषि, वायु ऋषि, आदित्य ऋषियों से वेदों का आविर्भाव होने से ऋग्वेद अग्नि से, यजुर्वेद वायु से, सामवेद आदित्य से आविर्भाव हुआ, ऐसा श्रुति होने से ईश्वर में वेदों का निर्माण जानना चाहिए।

"अग्नि वायु, रविभ्यस्तु" से **"ऋग्यजु साम और अग्नि"** आदि ऋषि कर्म हैं। स्वः सामवेद से मंगल गाया जाता है। **"अग्निर्दार्क"** शतपथ 2।5।4 **"श्रुतीरथर्वा अग्नि हिरसीः कुर्यादित्य विचारयन्। "मनुस्मृति।"** ब्राह्मण अपने वेद आंगिरस श्रुति का दुष्टाचरण हनन के लिए शीघ्र ही प्रयोग करें। द्युलोकस्थ सूर्य देव अर्थात् आदित्य ही सामवेद है।

अग्नि आयाहि इस मन्त्र में अग्नि का आह्वान किया गया है, जिसके सौन्दर्य की छटा परम

मनोहर सुन्दरतम है। अग्नि के सौन्दर्य से सम्पूर्ण संसार ज्योतिर्मय हो रहा है। सौन्दर्य में जो लावण्य, आभा प्रकाश, आकर्षण हो रहा है, उसका आह्वान किया गया है, उस ब्रह्माग्नि का सौन्दर्य सर्वत्र छाया हुआ है। ब्रह्मग्नि की छवि को देखकर संसार चकित हो रहा है। संसारी मानव विचार मग्न होता है, अपने नेत्र बन्द कर अन्तर्मुख हो जाता है। नेत्र खोलने पर उसे सर्वत्र ज्योति दिखाई पड़ती है। चन्द्रमा की ज्योति, सूर्य का प्रकाश, नेत्रों का आभास, दीपक की ज्योति किरण, विद्युत की चमचमाहट, बिजली का प्रकाश, अग्नि का प्रकाश, जब नेत्र बन्द कर लेता है, तब अन्धकार ही अन्धकार, वहिर्मुख होकर, उस परमात्मा की महिमा, सौन्दर्य अनुपम छटा का गुणगान करने लगता है।

हमारे हृदय मन्दिरों में परमात्मा विराजमान है। अग्नि सुन्दर देव, शीघ्रातिशीघ्र दर्शन दीजिए। मैं तुम्हारा गुणगान करता हूँ। मैं ही नहीं सम्पूर्ण संसार, मानव–पशु–पक्षी गुणगान कर रहे हैं। सूर्य, चन्द्र, जल, पवन, सागर, पर्वत, आकाश, पृथिवी, विद्युत–मेघ, द्यौ–अंतरिक्ष, शक्ति तेज तेरी अपरम्पार महिमा का गुणगान गा रहे हैं। मानव का जप, तप, होम, दान, पाठ, आदि अग्नि स्वरूप परमात्मा को प्राप्त करने के लिए हो रहा है। जीवन में प्रकाश को, पाप–ताप दु:ख–द्वेष का हमारे जीवन में क्षय हो। अग्नि के समान मेरे हृदय में शुभ विचारों का उदय हो। आप की पवित्र सत्ता मेरे हृदयासन पर निरन्तर विराजमान होकर कभी भी विस्मृत न हो।

(5)

ओ3म्–ये त्रिषप्ता: परियन्ति विश्वा रूपाणि बिभ्रत:। वाचस्पतिर्बला तेषां तन्वो अद्य दधातु मे।। –अथर्ववेद 1।1।1

(ऋषि–अथर्वा, देवता, वाचस्पति, छन्द–अनुष्टप्, स्वरः–पंचम।)

अंगरा ऋषि द्वारा अथर्ववेद का प्रकाशन। अथर्ववेद का प्रथम मन्त्र–

भावार्थ– हे सृष्टि–कर्त्ता, वेदवाणी के स्वामी, जगदीश्वर सम्पूर्ण रूपों को धारण करती हुई प्रकृति के जो त्रिषप्त– **7x3 = 21** इक्कीस तत्व अर्थात् पांच तन्मात्रायें– 1. शब्द, 2. स्पर्श, 3. रूप, 4. रस, 5. गन्ध। पांच महाभूत। 1. पृथिवी, 2. जल, 3. अग्नि, 4. वायु, 5. आकाश। पांच ज्ञानेन्द्रियाँ 1. आंख, 2. कान, 3. नाक, 4. जिह्वा, 5. त्वचा। पांच प्राण– 1. प्राण, 2. अपान, 3. व्यान, 4. समान, 5. उदान तथा एक अन्त:करण आपके सामर्थ्य से सृष्टि में चारों ओर व्याप्त होकर गति कर रहे हैं। इन इक्कीस तत्वों के शरीर सम्बन्धी बलों का आधार आज मेरे शरीर में कीजिए। जो परमात्मा त्रि अर्थात् तीन कालों को 1. भूत काल, 2. भविष्यत काल, 3. वर्तमान काल को गतिमान कर रहा है। जो परमात्मा 1. भूलोक, 2. मध्यलोक अर्थात् अन्तरिक्ष लोक, 3. द्युलोक में गतिमान हो रहा है जो परमात्मा (1) सतोगुण, (2) रजोगुण (3) तमोगुण रूप प्रकृति को जानता है। यह संसार त्रैत्ववान है। 1. ईश्वर, 2. जीव, 3. प्रकृति।

जो परमात्मा सात लोकों को गति दे रहा है–1. भू: लोक, 2. भुवः लोक, 3. स्वः लोक, 4. महः लोक, 5. जनः लोक, 6. तपः लोक, 7. सत्यलोक अर्थात् ब्रह्म लोकों में समाहित हैं।

जो परमात्मा सात तलों से विद्यमान है-1 अतल लोक, 2. वितल लोक, 3. सुतल लोक, 4. तलातल लोक, 5. महातल लोक, 6. पाताल लोक, 7. रसातल लोक। इन सब में बुद्धि की वृद्धि के लिए उपदेश दिया गया है।

जो परमात्मा **3 x 7 = 21** इक्कीस महाभूत 5+प्राण 5+ज्ञानेन्द्रिय 5+कर्मेन्द्रियाँ 5+अन्त:करण1 इक्कीस पदार्थ परमात्मा ने निर्मित किये हैं।

जो परमात्मा **3 x 7 = 21** लोकों में सात-सात रूपों में गति कर रहा है। मानव शरीर में तीन लोक हैं और प्रत्येक लोक में सात-सात तनू अर्थात् सात-सात देहिकायें विकास संस्थान रूप में विद्यमान हैं। सब वस्तुओं को धारण करते हुए, परमात्मा सब ओर व्याप्त हैं। वेद रूपवाणी का स्वामी परमेश्वर सब शरीर के बलों को देने वाला है। मूल रूप से यह बात है कि तृण से लेकर परमेश्वर पर्यन्त जो पदार्थ संसार की स्थिति के कारण है उन सब का तत्व ज्ञान वेदवाणी के स्वामी सर्वगुरू जगदीश्वर की कृपा से सब मनुष्य वेद द्वारा प्राप्त करते हैं और उस अन्तर्यामी पर पूर्ण विश्वास करके पराक्रमी और परोपकारी होकर सदा आनन्द भोगते हैं। उस मानव शरीर की तीन विकास संस्थान इक्कीस रूप में इस प्रकार हैं-

(1) सिर से ग्रीवा तक का भाग द्यौ है, जिसमें सात भाग इस प्रकार हैं- 1. विचार शक्ति-मस्तिष्क, 2. दर्शन शक्ति, 3. श्रवण शक्ति, 4. श्वसन शक्ति, 5. घ्राण शक्ति, 6. भाषण शक्ति और 7. आस्वादन शक्ति। यह सात विकास संस्थान हैं-

(2) ग्रीवा से नाभि तक अन्तरिक्ष है, जिसमें सात विकास संस्थान इस प्रकार हैं- 1. कर्तृत्वशक्ति- हाथ, 2. संकल्प शक्ति-मन, 3. चेतना शक्ति-चित्त, 4. श्रद्धा- सम्मान भाव, 5. साहस- निडर होना, 6. निर्भयता- निर्भीक होना, 7. पाचन शक्ति- आत्म सात करना। यह सात विकास संस्थान हैं।

(3) नाभि से पाद तक भू- पृथिवी है, जिसमें सात विकास संस्थान इस प्रकार हैं- 1. वीर्य रक्षण, 2. मल विसर्जन, 3. मूत्र विसर्जन, 4. गमन चाल, 5. धावन- दौड़, 6. वहन और 7. सहन। यह सात विकास संस्थान हैं।

अंगिरा ऋषि का अथर्ववेद मुख्य है- "अथर्वोगिरसो मुखम्" पृथिवीस्थ अग्निदेव ही ऋग्वेद, अन्तरिक्ष वायुदेव ही यजुर्वेद, द्युलोकस्य सूर्य देव ही आदित्य सामवेद हैं। यह तीनों ही अंगिरस्थ अथर्ववेद हैं। अथर्ववेद वाला अंगिरा ऋषि हमेशा स्वाध्याय करता है। अंगिरा ऋषि पर प्रकट हुए अथर्ववेद की श्रुतियों का पाठ करना उपयुक्त है। यह पाठ उदात्त, अनुदात्त स्वरित स्वर में सात प्रकार से करना है। वाचस्पति वेदवाणी को धारण करने वाला है। आचार्य "वाचस्पति" ऐसी बाणी प्रदान करें, जिससे सरस्वती निवास करें। ज्यों अध्ययन, अभ्यास, मितभाषण (परा-पश्यन्ती-मध्यमा-वैखरी) इन चारों वाणियों को जागृत करने का उपदेश और शिक्षा प्राप्त हो सके। श्रोता अभ्यासी तीनों लोकों 1. द्यौलोक, 2. अंतरिक्ष लोक, 3. पृथिवी लोक इन तीनों लोकों में स्थित इक्कीस विकास संस्थान शरीरावयवों के रूप-लावण्य का अभिवर्धन और संबर्धन हो सके।

-(शेष अगले अंक में)

गतांक से आगे-

मानव शरीरः कितना अद्भुत कितना अनुपम

लेखकः योगाचार्य चन्द्रभानु गुप्त

मन और विचारों की इसी समन्वित अद्भुत शक्ति का प्रयोग भिन्न-भिन्न उँगलियों और हथेलियों के माध्यम से किया जा रहा है। किसी को आशीर्वाद या शाप देने की प्रथा हमारे यहाँ पुराने जमाने से चली आ रही है। आशीर्वाद दिया फलित होता है। शाप देते थे वह भी फलित होता था। दोनों हाथों की हथेली को जोरों से घर्षण की जाती है। खूब देर तक तो वहाँ मोटर की शक्ति बनकर उभरती है। जैसे-बिजली की मोटर चलाते हैं, तो मोटर के तीव्र घर्षण से विद्युतीय चुम्बकीय शक्ति उत्पन्न होती है। पंखे, वल्व चालू हो जाते हैं, कल-कारखानों की मशीनें चालू हो जाती हैं, उसी प्रकार दोनों हाथों की हथेलियों के तीव्र घर्षण से ऊष्मा पैदा होती है। चुम्बकीय विद्युत शक्ति उत्पन्न हो जाती है। हमारे यहाँ दो उल्लेखनीय चिकित्सा पद्धति हैं-रेकी और प्राणिक हीलिंग। दोनों हाथों की हथेलियों के द्वारा ही देखने को मिलती है। इसके पीछे कारण यही है, मन और विचारों का अपनी सुन्दर भावनाओं से जोड़कर ये दोनों चिकित्सा पद्धति प्रयोग में लायी जाती हैं। आप चाहें तो स्वयं इसका प्रयोग करके देख सकते हैं। दोनों हाथों की हथेलियों को खूब जोरों से घर्षण करें और एक फीट की दूरी पर दोनों हाथों की हथेलियों से अत्यन्त सूक्ष्म ऊर्जा शक्ति प्रवाहित होने लगेगा। हमारे मानव शरीर की उँगलियाँ और हथेली सूक्ष्म शक्तियों से परिपूर्ण है। जानकार इन शक्तियों का उपयोग कर लाभान्वित होते हैं और सदुपयोगी कार्य करते हैं, इसका यह एक नमूना है।

इसी प्रकार प्रातः उठने पर अपने प्रातःकालीन कार्य का प्रारम्भ थोड़े समय के ध्यान से करें। तब जागरण के बाद का ध्यानार्जित उच्च स्तरीय चेतनता से प्राप्त दिन के क्रिया-कलापों में जुट जायें। इस प्रक्रिया की सुविधा हेतु किसी पवित्र ग्रन्थ के कुछ पन्न पढ़ने का अथवा मानसिक रूप से या मौखिक रूप से कुछ मन्त्रों का उच्चारण करना अधिक श्रेयस्कर होगा। जब भी सोयेंगे, ध्यान रखें कि सिर उत्तर दिशा की ओर न हो। उत्तर दिशा की ओर सिर रखकर सोने से मस्तिष्क ठीक ढंग से काम नहीं करेगा और अधिक दिनों तक ऐसा सोते रहने से मस्तिष्क विकृत हो सकता है। उठने के समय हमेशा दांयी करवट या बायें करवट उठना चाहिये। उससे स्वास्थ्य अच्छा बना रहेगा।

प्रकृति ने हमारे शरीर में जितने अंग अवयव फिट कर रखे हैं, वह सभी एक से एक अनूठे एवं आश्चर्यजनक हैं। दुनियाँ के किसी भी कारखाने में, किसी भी वैज्ञानिक के लिये यह अंग अवयव बनाना आज तक सम्भव नहीं हो सका है। जैसे-यकृत, तिल्ली और आमाशय ये जीनों एक से एक अनूठे रासायनिक कारखाना स्वरूप हैं। हम जो भोजन करते हैं, उसका रस बनता है, रस से रक्त बनता है

और ये सभी यकृत रूपी कारखाने में ही बनते हैं। हमारे शरीर की कोशिकाएँ हर सात वर्षों पर पुरानी होकर समाप्त हो जाती हैं और नई कोशिकाएँ उनकी जगह बनकर आ जाती हैं। टूटी हुई कोशिकाएँ पुरानी अवस्था में बिखरकर यकृत में एकत्र हो जाती हैं। जिससे वह पित्त बना देता है और बनाकर उसको पित्ताशय रूपी एक यन्त्र में जमा कर देता है। जिसे हम गाल-ब्लेडर (पित्ताशय) कहते हैं और रक्त बनाकर वो हृदय में भेज देता है। इसी प्रकार का कार्य तिल्ली करता है, जो रक्त बनाता है। आमाशय तरह-तरह के खाद्य पदार्थ जो हम भोजन के रूप में लेते हैं। आमाशय में एकत्र होता है, जहाँ चक्की में वह पीसा जाता है और जाकर रक्त बन जाता है।

हृदय और गुर्दे इनका काम है, शोधन करना। भोजनोपरान्त उससे जो रस रक्त माँस मज्जा आदि बनते हैं, उसमें जो अवांछित तत्व मिल जाते हैं और गन्दगी रहती है, उसका ये दोनों शोधन करते हैं, फिल्टर करके शुद्ध बना देते हैं और तब गुर्दे गन्दगी को शरीर से बाहर विसर्जन कर देते हैं। ये दोनों शोधन यन्त्र हैं। मस्तिष्क को ही देखा जाये तो यह यकृत जैसा बड़ा यन्त्र नहीं है, अत्यन्त सूक्ष्म बिन्दु मात्र है, किन्तु यह सुपर कम्प्यूटर का काम करता है। इसके अन्तर्गत जन्म जन्मान्तरों की स्मृति चिह्न और वर्तमान जिन्दगी की जन्म से लेकर आज तक सारी स्मृतियाँ विराजमान हैं। करोड़ों नहीं अरबों तक की संख्या कही जा सकती है।

यह आँख कितना सुन्दर कैमरा है। है तो छोटी सी गुल्लक में किन्तु इस गोलक में क्या छोटा या बड़ा चित्र सब दिखाई पड़ता रहता है। आज के आधुनिक कैमरों में भी इतना सुन्दर चित्र नहीं खींच सकते, जो हमारी आँखें खींच लेती हैं। छोटे से कान के छिद्र से भिन्न-भिन्न स्वर सुनाई पड़ते रहते हैं। बहुत आसानी से दूर-दूर तक की आवाजें यहाँ पहुँच जाती हैं, छोटे से कान से, हमारा कान कैसा है, सूपाकार है। कान की बनावट हम अगर ध्यान से देखे तो कहीं गड्डे, समतल, आढ़े-तिरछे दो गड्डे ऊबड़-खावड़ ऐसी बनावट हमारे सम्पूर्ण शरीर में कहीं नहीं है। प्रकृति ने कान की ऐसी संरचना क्यों की? कितनी डेसीबल स्वर कान के छिद्र से प्रवेश कर सके, इसलिये ये संरचना है, ज्यादा डेसीबल का स्वर अगर कान के अन्दर घुसा, तो कान के पर्दे फट सकते हैं, बहरापन ला सकता है। उसी को सुरक्षित रखने के निमित्त यह संरचना है। हमारे शरीर में (लिम्फ) प्रणाली है। जो स्नायु केन्द्र हमारे शरीर में बिछा हुआ है। लिम्फ प्रणाली नगर निगम के समान सम्पूर्ण शरीर की सफाई की व्यवस्था बनाये रखना, नस नाड़ी स्नायु का जाल मीलोंमील लम्बी सम्पूर्ण शरीर में फैली हुई संचार की व्यवस्था सम्भाले हुए है, अहर्निश कार्य करती रहती है और हमारे शरीर में एक अद्भुत एक सूक्ष्म महत्वपूर्ण अंग और भी हैं, जिसे मन कहते हैं। वैज्ञानिकों का कहना है कि प्रकाश की गति 18160 मील प्रति सैकेण्ड है। मन की गति इससे भी अति तीव्र है। मैं बैठा हूँ वृन्दावन में, पलक झपकते ही अपने बेटे पोतों के पास अमेरिका पहुँच गया। ये है इसकी तीव्र गति। हमारे आन्तरिक अवयव बड़ी ही संतुलित, सुनियन्त्रित, न्यायिक एवं प्रशासनिक ढंग से अहर्निश अवयव कार्य करते रहते हैं। जैसे हमने भोजन किया, पित्ताशय, उसको पचाने के निमित्त

पित्त छोड़ती है।

भोजन की मात्रा कम है, तो पित्त भी कम और भोजन की मात्रा अधिक तो पित्ताशय पित्त अधिक छोड़ता है। यदि भोजन की मात्रा कम हो पित्ताशय अधिक पित्त छोड़ दे, तो उसका दुष्प्रभाव शरीर पर तुरन्त दिखने लगता है। खाद्यक भोजन की मात्रा अधिक हो उसके अनुपात में पित्ताशय कम पित्त छोड़े तो शरीर पर दुष्प्रभाव पड़ेगा। इसी प्रकार हृदय शरीर के समस्त भागों में रक्त का उचित वितरण करता है। कहीं अधिक आवश्यकता हुई तो रक्त को अधिक और जहाँ कम रक्त की आवश्यकता हुई तो वहाँ कम पहुँचाया जाता है। इसी प्रकार अन्तः श्रावी ग्रन्थियाँ कार्य करती रहती हैं। यही है न्यायिक एवं प्रशासनिक व्यवस्था मानव शरीर हमारा शरीर का एक निश्चित वजन होता है। किसी का डेढ़ मन, किसी का दो मन, किन्तु चलते-फिरते उठते-बैठते उस वजन का अनुभव कभी होता ही नहीं है। जबकि हाथों में इस वजन का अनुभव कभी होता ही नहीं है। जबकि हाथों में या सिर पर या कन्धों पर दस-बीस किलो की कोई चीज लेकर चलने पर उसका वजन बराबर महसूस होने लगता है। हाथ सिर कन्धों में दर्द होने लगता है।

कहीं यात्रा पर घर से बाहर जाना हो तो एक सूटकेश में पहनने ओढ़ने के, बिछाने के कपड़े यथासम्भव व्यवस्थित ढंग से तहकर रख देते हैं। बस में या ट्रेन में धक्का लगने पर या ऊपर से नीचे गिर पड़ने पर सूटकेश में रखे हुए कपड़े इधर-उधर खिसक कर अपना स्थान नहीं बदलते हैं और न उछलने-कूदने दौड़ने से ही हो पाता है। ट्रेन या बस में आने-जाने के समय कोई दुर्घटना हो जाती है और उसमें सवार यात्री एक-दूसरे से टकरा जाते हैं या घायल हो जाते हैं। फिर भी हमारे शरीर के आन्तरिक अंग अवयव अपनी जगह पर यथास्थान बैठे ही रहते हैं। एक सूत भी इधर से उधर नहीं खिसकते। ऊपर से नदी में छलांग लगाते समय अथवा तैरते समय भी सभी अंग यथास्थान ही बैठे रहते हैं। अपनी जगह नहीं छोड़ते। हृदय जहाँ है, वहीं रहता है। यकृत, तिल्ली, गुर्दे अपनी-अपनी जगह बैठकर कार्य करते रहते हैं। यदि ये दुर्घटना के कारण अपना स्थान छोड़ दें, इधर-उधर खिसक जायें तो यह शरीर ज्यादा दिन टिका न रहेगा। प्रकृति ने कितनी आश्चर्यजनक ढंग से इस मानव शरीर की संरचना कर रखी है। आश्चर्यजनक सूटकेश है ये, जो प्रकृति की एक अनूठी देन है। यह जो हमें वरदान के रूप में मिला है, ये एक-दूसरे से अन्दर गोंद से चिपकाया हुआ नहीं है और तार से बँधा नहीं है। फिर भी ये खिसकता क्यों नहीं है? इधर से उधर क्यों नहीं होता है?

हमारे शरीर के आन्तरिक अंग अवयव अथवा बाह्य अवयव सभी एक से एक महत्वपूर्ण हैं। इनका मूल्य लगाया जाये, तो सभी कहेंगे कि ये अमूल्य हैं। यानि करोड़ों-करोड़ की सम्पत्ति है यह मानव शरीर। करोड़ों-करोड़ की यह सम्पत्ति अपने शरीर में संजोये हुए हैं। हम फिर भी रोना रोते रहते हैं कि हम बहुत गरीब हैं। मैंने बहुत से लोगों को देखा है, अस्पतालों में जाकर अपने शरीर का रक्त बेचते हुए। हर तीन महीने में ये अस्पताल जाते हैं, रक्त बेचते हैं। हजारों रुपये लेकर घर वापस आते हैं।

हमारे शरीर में दो गुर्दे हैं। एक गुर्दा शरीर से निकल जाये तो हम मरेंगे नहीं, जिन्दगी चल सकती है। उस एक गुर्दे को बेच दिया जाये तो लाखों रुपये मिल सकते हैं, इसी प्रकार हम चाहें तो एक आँख की भी अच्छी कीमत मिल सकती है। इतनी मूल्यवान अवयव हमारे शरीर में है, पर सहज रूप से कोई भी व्यक्ति उस अंग अवयव से वियोग नहीं चाहेगा। किसी के माँगने पर स्वभावतः हम उसे देना नहीं चाहेंगे। हाँ, एक बात अवश्य है, यदि हमारे किसी पुत्र के गुर्दे खराब हो गये हों तो पिता अपने प्रिय पुत्र के लिये अपना एक गुर्दा देना खुशी से स्वीकार कर लेगा और पिता ही एक गुर्दे को पुत्र के शरीर में प्रत्यारोपण करा देता है। यह अलग बात है कि जीवितावस्था में हमने अपना एक अंग अवयव किसी दूसरे व्यक्ति को प्राण दान देने के लिये उस अंग का दान कर दिया, तो मृत्युपरान्त हमारा पुनर्जन्म जो होगा, उस नूतन शरीर में हम उस विशिष्ट अंग अवयव से जो दान दिया गया था, अंग विहीन होंगे। प्रकृति की इस संरचना को देख–सुनकर–समझकर हम हैरतअंगेज हो जाते हैं।

हमारा यह मानव शरीर अपनी देखभाल स्वयं करता है। जैसे–स्वयंचालित किसी मशीन के साथ अनावश्यक छेड़छाड़ की जाये तो वह मशीन काम करना बन्द कर देती है और खराब हो जाती है। उसी प्रकार यह मानव शरीर भी एक अद्‌भुत स्वयंचालित मशीन ही है। इसके साथ भी अनावश्यक छेड़छाड़ की जाये तो यह रोगग्रस्त हो जायेगा। अधिक दिनों तक टिका नहीं रह सकता।

शरीर में हाथ–पैर में किसी कारणवश फ्रैक्चर हो जाता है तो चिकित्सक हड्डी को यथास्थान बैठाकर पट्टी बांध देते हैं। शरीर अपने ढंग से कार्य करता रहता है और हड्डी कुछ दिनों के बाद स्वयंमेव जुड़ जाती है। शरीर अपनी मरहम पट्टी स्वयंमेव करता रहता है।

प्रत्येक जीव का शरीर शुक्र, रक्त, मेद, माँस, मज्जा, अस्थि और त्वक् इन सात धातुओं से बना है। मृत्तिका, वायु, अग्नि, जल और आकाश इन्हीं पंचभूतों से शरीर के बनाने में समर्थ ये सप्तधातु एवं क्षुधा तृष्णादि शरीर के धर्म उत्पन्न हुए। पंचभूतों से बना यह भौतिक शरीर निर्जीव एवं जड़ स्वभावतः है, किन्तु चैतन्यरूपी पुरुष के अवस्थान की भूमि होने के कारण यह सचेतन है। शरीर के भीतर पंचभूतों में प्रत्येक के अधिष्ठान के लिये स्वतन्त्र स्थान नियत है, यही चक्र है। वे सब अपने–अपने चक्र में अवस्थान करते हुए शरीर के सभी कार्य कर रहे हैं। गुह्य देश में मूलाधार चक्र पृथ्वी तत्व का स्थान है। लिंग मूल में स्वाधिष्ठान चक्र जल तत्व का, नाभि मूल में मणिपुर चक्र अग्नि तत्व का, हृदय में अनाहत चक्र वायु तत्व का और कण्ठदेश में विशुद्धि चक्र आकाश तत्व का स्थान है। ललाट देश भ्रूमध्य के आज्ञा नामक चक्र, पंचतन्मात्र तत्व, इन्द्रिय तत्व चित्त और मन का स्थान है। ब्रह्म रन्ध्र के शतदल चक्र में महत तत्व का स्थान है।

मानव शरीर पंचतत्व से उत्पन्न हुआ है। मिट्टी से अस्थि, माँस, नाखून, त्वक, रोआं। जल से शुक्र रक्त मज्जा मल मूत्र ये पाँच। वायु से धारण करना, चलना, फेंकना, सिकोड़ना, फैलाना ये पाँच। अग्नि से निद्रा, भूख, प्यास, क्लान्ति और आलस्य ये पांच तथा आकाश से काम, क्रोध, लोभ, मोह और लज्जा उत्पन्न हुए हैं।

–(शेष अगले अंक में)

शल्य चिकित्सा

लेखकः स्वामी ब्रह्ममुनि परिव्राजक

शरीर पर शस्त्र, पाषाण आदि द्वारा आघात-चोट आ जाने, कट जाने या कहीं से गिर कर अंगों हड्डियों के टूट जाने आदि पर घावों को भरने, टूटे को जोड़ने आदि का उपचार शल्य चिकित्सा कहलाती है। अथर्ववेद में शल्य चिकित्सा का वर्णन है और वह तीन प्रकार के उपचारों से है। प्रथम औषधियां, दूसरे प्राकृतिक पदार्थ और तीसरे बन्धन-छेदनादि शस्त्रकर्म (चीर-फाड़) ये तीन उपचार हैं। प्राकृतिक पदार्थों द्वारा तो पीछे 'जलचिकित्सा' में बतला आये हैं, वहाँ देख लें। औषधियों और बन्धन-छेदनादि शस्त्रकर्म के द्वारा शल्यचिकित्सा का वर्णन यहाँ करते हैं। प्रथम अथर्ववेद काण्ड 4, सूक्त 12 को देखें।

रोहण्यसि रोहण्यस्थ्नश्छिन्नस्य रोहणी। रोहयेदमरुन्धति।। 1।।

अर्थ- (रोहणि) हे रोहणी औषधि ! तू (रोहणि) रोहण करने वाली, घाव को भरने वाली (असि) है (छिन्नस्य) कटे अंग-शस्त्र से घायल अंग को तथा (अस्थ्नः) हड्डी तक को (रोहणी) भरने वाली-पूरा करने वाली-जोड़ने वाली है (अरुन्धति) हे अप्रतिहन्ता अचूक औषधि! तू (इदम्) इस घाव आदि को (रोहय) भर-जोड़॥ 1॥

घाव को भरने वाली कटी हड्डी को भी जोड़ देने वाली अचूक औषधि रोहणी-रोहिणी है। रोहणी नाम की एक स्वतन्त्र औषधि है जिसे मांसरोहिणी भी कहते हैं और उसे आयुर्वेद शास्त्र में रुधिर पर अधिकार पानी वाली, घाव को ठीक करने-भरने वाली भी कहा है। दूसरे रोहिणी सात औषधियों का नाम भी है जो गम्भारी, मँजीठ, कटुकी, हरड़, ब्राह्मी बूटी, बन्दा, हल्दी हैं। इनमें कटुकी को कटुरोहिणी, हरड़ को रोहिणी, गम्भारी को पीतरोहिणी, बन्दा को तरुरोहिणी नाम दिये हैं, इसलिए इन्हें रोहणी नाम से ग्रहण कर सकते हैं। तथा मंजीठ, ब्राह्मी और हल्दी ये बहते रुधिर को रोकने, शोधने, घाव को भरने, शोथ हटाने वाली आयुर्वेदिक निघण्टु में कही गई हैं। घाव को भरने आदि के कारण इन्हें रोहिणी कहा जाता है। यहाँ मन्त्र में यह 'रोहिणी' व्यक्तिवाचक है या जातिवाचक-यह प्रश्न है। व्यक्ति में तो केवल 'रोहणी' औषधि जिसे मांसरोहिणी कहते हैं, वही ली जावेगी। जातिवाचक होने में उक्त मंजीठ आदि सात औषधियां घाव को भरने वाली होने से ली जायेंगी। हमारी सम्मति में लाघव से व्यक्तिवाचक अर्थ 'रोहिणी' नाम की औषधि ग्रहण करना ठीक है। जातिवाचक 'घाव को भरने वाला' धर्म भी इसमें घटता ही है। अस्तु। इसलिए हमने व्यक्तिवाचक रोहिणी मांसरोहिणी औषधि को मानकर ही यहां अर्थ किये हैं।

यत् ते रिष्टं यत् ते द्युत्तमस्ति पेष्ट्रं त आत्मनि।
धाता तद् भद्रया पुनः संदधत् परुषा परुः।। 2।।

अर्थ– (यत्) जो (ते) तेरा अंग (रिष्टम्) चोट खा गया है (यत्) जो (ते) तेरा अंग (द्युत्तम्) छिलकर चमक गया–लाल–लाल मांस दिखाई देने लगा या जल गया (ते) तेरे (आत्मनि) शरीर में (पेष्ट्रम्) पिस गया–अन्दर की चोट खा गया (अस्ति) है (तत्) उसको (धाता) संधाता–जोड़ने वाला वैद्य (परुषा परुः) जोड़ को जोड़ से–अंग को अंग से (भद्रया) भद्रा औषधि से (पुनः) फिर (संदधत्) जोड़ दे॥ 2॥

किसी अंग में चोट आ जाने, छिल जाने, दरड़े जाने, या घाव पड़ जाने से वहां का रक्त मर जाता है, नीला पड़ जाता है या बहने लगता है। उसे ठीक करने रक्त को रोकने और घाव भरने के लिये मन्त्र में 'भद्रा' कही है। 'भद्रा' एक औषधि है जिसे सारिवा या अनन्तमूल कहते हैं। 'सारिवा' दो प्रकार की है, कृष्णा सारिवा–श्वेत सारिया गुण दोनों के रक्तविकार को ठीक करना, चोट खाये और जले आदि घाव को स्वस्थ बनाना आयुर्वेदिक निघण्टुओं में बतलाये है तथा दोनों को भद्रवल्ली भद्रवल्लिका नाम दिये हैं। परन्तु कृष्णसारिवा को सुभद्रा और भद्रा नाम से कहा है अतएव मन्त्र में कृष्णसारिवा लेना उचित प्रतीत होता है, तथा रोहिणी की भांति भद्रा भी सात औषधियों को आयुर्वेदिक निघण्टु में कहा है जो कि बला, नीली, दन्ती, गम्भारी, अनन्तमूल, श्वेतविष्णुक्रान्ता, हल्दी हैं। इन सभी औषधियों में रक्त–विकार, घाव, जले आदि को ठीक करके शरीर या रुग्णस्थान में भद्रता अर्थात् उत्तम वर्ण लाने के गुण होने से इनका भी नाम भद्रा है।

सं ते मज्जा मज्ज्ञा भवतु समु ते परुषा परुः।
सं ते मांसस्य विस्रस्तं समस्थ्यपि रोहतु।। 3।।

अर्थ– (ते) हे आहत रोगी! तेरी (मज्जा) हड्डियों की चिकनी धातु (मज्ज्ञा) मज्जा धातु से (संभवतु) मिल जावे–संगत हो जावे (ते) तेरा (परुः) पोरु–जोड़ (परुषा) पोरु–जोड़ से (उ) अवश्य (सं 'संभवतु') मिल जावे (ते) तेरे (मांसस्य) मांस का (विस्रस्तम्) विनष्ट भाग–घाव (सं 'रोहतु') पूरा हो जावे–भर जावे (अस्थि–अपि) हड्डी भी विनष्ट हुई (सं 'संरोहतु') पूरी हो जावे॥ 3॥

मज्जा मज्ज्ञा सं धीयतां चर्मणा चर्म रोहतु।
असृक् ते अस्थि रोहतु मांसं मांसेन रोहतु।। 4।।

अर्थ– (मज्जा) मज्जा धातु (मज्ज्ञा) मज्जा से (संधीयताम्) जुड़ जावे (चर्म) खाल–त्वचा (चर्मणा) खाल–त्वचा के साथ (रोहतु) मिलकर भर जावे, पूरी हो जावे (ते) तेरा (असृक्) रुधिर (अस्थि) हड्डी (रोहतु) भर जावे–पूरी हो जावे (मांसम्) मांस (मांसेन) मांस के साथ (रोहतु) पूरण हो जावे–भरे–सुगठित हो॥ 4॥

लोम लोम्ना संकल्पया त्वचा संकल्पया त्वचम्।
असृक् से अस्थि रोहतु छिन्नं सं धेह्योषधे।। 5।।

अर्थ– (लोम) रोम को (लोम्ना) रोम से (संकल्पय) संगठित–संयुक्त कर (त्वचम्) त्वचा को (त्वचा) त्वचा के साथ (संकल्पय) संगठित–संयुक्त कर (ते) तेरा (असृक्) रुधिर (अस्थि) हड्डी (रोहतु) भर जावे–पूरी हो जावे (औषधे) हे रोहणि तथा भद्रा औषधि! तू (छिन्नम्) टूटे को (संदेहि) जोड़ दे॥ 5॥

सं उत्तिष्ठ प्रेहि प्रद्रव रथः सुचक्रः सुपविः सुनाभिः। प्रति तिष्ठोर्ध्व॥ 6॥

अर्थ– (सः) वह तू (उत्तिष्ठः) उठ (प्रेहि) चल फिर (प्रद्रव) दौड़ (सुचक्रः) उत्तम चक्र वाले (सुपविः) उत्तम घेरे वाले (सुनाभिः) उत्तम केन्द्र वाले (रथः) रथ की भांति (ऊर्ध्वः) शय्या को छोड़कर (प्रतितिष्ठा) प्रतिष्ठा को प्राप्त कर–उसी अपने स्वास्थ्य को फिर प्राप्त कर॥ 6॥

यदि कर्तं पतित्वा संशश्रे यदि वाश्मा प्रहृतो जघान्।
ऋभू रथस्येवांगानि संदधत् परुषा परुः॥ 7॥

अर्थ– (यदि) यदि (कर्तम्) काट देने वाला शस्त्र (पतित्वा) गिर कर (संशश्रे) हिंसित कर दे–काट दे (यदि वा) और यदि (अश्मा) पत्थर (प्रहृतः) लगा हुआ (जघान) चोट पहुँचावे तो (ऋभुः) शिल्पी (रथस्य–इव) रथ के जैसे (अन्नानि) अंगों को जोड़ देता है ऐसे (परुषा परुः) शरीर के जोड़ से जोड़ को पोरु से पोरु को (संधदत्) जोड़ दे॥ 7॥

रक्त बहने, अंग में चोट आ जाने, उसके पिस जाने, जल जाने, दरड़े जाने, कट जाने, टूट जाने आदि की चिकित्सा रोहणी और भद्रा नाम की औषधियों से करना इस सूक्त में बतलाया है। उक्त औषधियां इनकी अचूक भेषज (इलाज) हैं। इन औषधियों के स्वरस, कसाय, लेपन पुल्टिस आदि के सेवन से कष्ट दूर होकर मज्जा का संगठन, जोड़ों का जोड़ों से मिल जाना, गलित मांस और हड्डी का सुधर जाना, घाव का अच्छा होकर दूसरी खाल आकर पहली खाल से एकरंग हो जाना, घाव की खाल पर बाल आकर अन्य बालों से मिल जाना, रोगी का अच्छा होकर शीघ्र चल फिर सकना, कटे–टूटे अंगों का जुड़ कर पूर्णांग बन जाना आदि लाभ कहे हैं। आयुर्वेदिक ग्रन्थों में रोहिणी और भद्रा के इन जैसे गुण बतलाए तो हैं, परन्तु इतने नहं। हो सकता है इन औषधियों में वेद में कहे उक्त गुण हों और आयुर्वेदिक क्षेत्र में अभी इनके अन्य गुणों की खोज की आवश्यकता है। सायणभाष्य में रोहिणी के स्थान पर प्रसिद्ध रोहिणी औषधि न लेकर लाक्षा का विनियोग इस सूक्त में किया है और भद्रा को लाक्षा का विशेषण रखा है, स्वतन्त्र औषधि नहीं। लाक्षा में उक्त गुण अवश्य बहुत कुछ आयुर्वेदिक शास्त्र में बतलाए हैं परन्तु सायण ने रोहिणी के स्थान पर लाक्षा को लेने में कोई प्रमाण नहीं दिया। मन्त्रों के स्वारस्य में रोहिणी का अर्थ रोहिणी औषधि न करके लाक्षा अर्थ करने में हमें कोई प्रबल प्रमाण नहीं मिलता। वैदिक काल में लाक्षा को ही रोहिणी कहते हैं, इसका भी कोई आधार नहीं दीखता। अतएव मन्त्रों का स्वारस्य तो रोहिणी औषधि अर्थ करने में ही जंचता है। सायण से अतिरिक्त भाष्यकारों ने भी 'भद्रा' शब्द को सायण की भांति रोहिणी का विशेषण माना है परन्तु हमने इसे स्वतन्त्र औषधि माना है। जबकि भद्रा नाम की ओषधि तथा इसका सप्तक भद्रागण भी रोहिणी की भांति है और मन्त्रों में बतलाए गुण भी

इसमें मिलते हैं, तब भद्रा शब्द से भद्रा नाम की स्वतन्त्र औषधि ही अर्थ लेना चाहिए।

अब अथर्ववेद काण्ड 6, सूक्त 90 के द्वारा शस्त्र की शल्यचिकित्सा देखें–

यां ते रुद्र इषुमास्यदंगेभ्यो हृदयाय च।
इदं तामद्य त्वद्वयं विषूचीं वि वृहामसि॥ 1॥

अर्थ– (रुद्रः) रुलाने वाले क्रूर मनुष्य ने (ते) हे आहत! तेरे (अंगेभ्यः) अंगों के लिये–अंगों में घुसाने के लिये (च) और (हृदयाय) हृदय के लिये–हृदय को वेदना देने के लिये–प्राण हरने के लिये (याम्) जिस (इषुम्) चुभने अन्दर घुसने वाले बाण आदि शस्त्र को (आस्यत्) फेंका है (वयम्) हम (अद्य) आज–अब (ताम्) उस (विषूचीम्) विषरूप विकार फैलाने वाले को (इदम् विवृहामसि) इसी प्रक्रिया से–शस्त्र से चीर–फाड़ कर बाहर निकालते हैं॥ 1॥

शरीर के अन्दर किसी शस्त्र का टुकड़ा घुस जाने पर उसे शीघ्र से शीघ्र शल्यक्रिया से बाहर निकाल देना चाहिये, क्योंकि वह शरीर में, रुधिर में तथा मांस और हड्डी के अन्दर रहकर विषविकार–विष जैसे प्रभाव को फैलाकर जीवन का घातक बनता है।

यास्ते शतं धमनयोऽअंगान्यनु विष्ठिताः।
तासां ते सर्वासां वयं निर्विषाणि ह्वयामसि॥ 2॥

अर्थ– (ते) हे आहत मनुष्य ! तेरी (याः) जो (शतं धमनयः) सैकड़ों धमनियां (अंगानि–अनु) अंगों में अनुगत होकर (विष्ठिताः) फैली हुई हैं (वयम्) हम (ते) तेरी (तासां सर्वासाम्) उन सबके (विषाणि) विषों को (निर्ह्वयामसि) दूर करते हैं–निकालते हैं॥ 2॥

शरीर में अंग–अंग के अन्दर रक्त–नाड़ियां फैली हुई हैं उनमें शस्त्र या शस्त्र के टुकड़े ने घुस कर अन्दर ही अन्दर जिन विषप्रभावों को फैलाया हो उन्हें औषधोपचार से दूर करना चाहिये।

उपर्युक्त वर्णन से सिद्ध होता है कि शस्त्र प्रहार से हुए रोगों का कारण भी विष है, क्योंकि शरीर में शस्त्रभाग रह जाने से तुरन्त विषप्रभाव को उत्पन्न कर देता है, अतः यह बात यहां और भी पुष्ट हो जाती है कि समस्त रोगों का कारण विष है जैसा 'सूत्र स्थान' में हम यक्ष्माणं सर्वेषां विषं निरवोचमहं त्वत् (अथर्व. 9/89/10) से बतला आए हैं। अस्तु। ❁

पाठकों से विनम्र निवेदन

'तपोभूमि' मासिक पत्रिका के पाठकों से विनम्र निवेदन है कि वर्ष **2022 तथा 2023** का वार्षिक शुल्क अविलम्ब **'सत्य प्रकाशन'** वेदमन्दिर, वृन्दावन मार्ग, मथुरा के कार्यालय को जमा करायें। आशा और विश्वास है कि पाठकगण अविलम्ब शुल्क भेजकर अपनी पत्रिका समयानुसार प्राप्त करते रहेंगे। जो महानुभाव ऑन लाइन द्वारा शुल्क जमा करते हैं वे फोन द्वारा कार्यालय को सूचित अवश्य करें ताकि उनका शुल्क जमा किया जा सके। **–व्यवस्थापक**

दान

लेखक:– चिम्मनलाल वैश्य

दान के बड़े–बड़े महात्म्य हैं। जो देगा सो पायेगा। तुलसीदास जी ने कहा है कि–

"तुलसी दिया अनूप है, दिया करो सब कोय।
कर का धरा न पाइयो, जो कर दिया न होय।"

राजा कर्ण तथा हरिश्चन्द्र ने दान के कारण संसार में यश और मरने पर स्वर्ग प्राप्त किया। जो मनुष्य सत्य विद्या आदि पदार्थों का दान करते हैं वे अतुल कीर्ति पाकर स्वयं सुखी रहते हैं और अन्य को भी सुखी रहते हैं। दान करने से दोनों लोकों में प्रतिष्ठा होती है तथा स्वर्ग मिलता है। यह परम शान्ति का कारण है। तीनों लोकों में दान से बढ़कर कल्याण करने वाला और कोई धर्म नहीं है। बिना दान के एक दिन भी व्यतीत न करना चाहिए। उत्तम दानों से उत्तम कामनाएँ सिद्ध होती हैं। धर्म के तीन काण्ड हैं। पहले काण्ड के तीन भाग हैं, एक यज्ञ, दूसरे वेदों का पढ़ना और तीसरा दान। आर्ष शास्त्रों में दान की बड़ी महिमा है। इसलिए भारत के स्त्री पुरुष सब जातियों से अधिक दानी हैं। संसार के किसी भाग में इतना दान नहीं होता जितना हमारे देश में होता है। हमारे घरों का कोई काम बिना दान के पूरा नहीं होता। अक्षय फल की प्राप्ति के लिए प्रति आठवें, पन्द्रहवें दिन, बच्चा पैदा होने पर, नामकरण, मुण्डन, विवाह, पर्व, तीर्थ, मृत्यु आदि सभी पर हम अपनी सामर्थ्यानुसार दान करते हैं। पुण्य की जड़ हरी है यह तो हम जानते हैं पर सोच समझ कर दान देना हम भूल गए हैं। सुपात्रों को दान देने से दान का फल मिलता है और कुपात्रों को दान देने से हम पाप के भागी होते हैं। आजकल हम जो दान करते हैं वह अधिकतर कुपात्रों को दिया जाता है। इसलिए हमें अपने दानों का कोई सुफल प्राप्त नहीं होता। सत्कर्मी, पुरुषार्थी, विद्वान एवं विद्या सम्पन्न सत्पात्र और निष्कर्मी, मन्दभागी तथा आलस्य आदि अवगुणों से युक्त अपात्र कहलाते हैं।

मनुस्मृति अ0 3 श्लोक 97 में लिखा है कि जो गृहस्थ अज्ञानवश सत्पात्र को न जान, वेद के अर्थ का तत्व न जानने वाले ब्राह्मण देव एवं पितरों को दान देता है उसका दान राख में घी की आहुति देने के समान निष्फल हो जाता है। याज्ञवल्क्य स्मृति अ01 श्लोक 6 में कहा है कि जो जन देश, काल और पात्र को देखकर श्रद्धा से दान देते हैं वह दान उत्तम दान कहलाता है। ऋतु देखकर दान करे, ऐसा न करे कि शरद ऋतु में ग्रीष्म के और ग्रीष्म ऋतु में शरद के पदार्थ दान करे।

अन्धे, लूले, लंगड़े, कोढ़ी, अनाथ बच्चे, बहुत वृद्ध या बहुत दुर्बल, अंगहीन जो अपनी जीविका नहीं कमा सकते दान के अधिकारी हैं। जो परोपकार में इतने लगे हुए हैं कि उनको जीविका उपार्जन करने का समय नहीं है, यथा सच्चे साधु संन्यासी, सच्चे उपदेशक, देश–समाज–जाति धर्म के सच्चे

सेवक। यह रात दिन निःस्वार्थभाव से दूसरों की सेवा में लगे रहते हैं। यदि इनकी सहायता न की जाय तो यह परोपकार छोड़ रोटी कमाने में लग जायेंगे और समाज को हानि पहुंचेगी। उन स्त्री पुरुषों को जो याचना करने में सकुचाते हों पर जिन्हें सहायता की आवश्यकता हो वे भी सहायता देने योग्य हैं।

हिन्दू स्त्रियां प्रतिदिन ऐसे भिखारियों को भीख डालती हैं। जिन्होंने भीख मांगना अपना पेशा बना रक्खा है। यह हट्टे कट्टे जो परिश्रम कर दो चार आने रोज पैदा कर सकते हैं, गले में झोली डाल भीख मांगने निकल पड़ते हैं और हिन्दू देवियाँ उनकी झोली भर देती हैं। हमारा धन लोगों को आलसी अधर्मी बनाने में व्यय हो रहा है। जग मनुष्य देखते हैं कि बिना परिश्रम किए नाना प्रकार के पदार्थ मिल सकते हैं और लोग सेवा में रहते हैं तो फिर परिश्रम क्यों करें? आचरण सुधार और विद्या की इन नामधारी साधु–संतों ब्राह्मणों और पंडितों को कोई आवश्यकता नहीं। जहाँ तिलक छापे लगाए, कंठी माला गले में डाली, पत्रा बगल में दबाया, जटा रखा ली, चिमटा तूंबा हाथ में लिया, बाबा जी आदि बन मजे से चैन उड़ाते हैं। स्त्री पुरुषों के कान फूंक तन मन धन अपने अर्पण करा आनन्द भोगते हैं। कोई कोई जंगलों में मढ़ी बनाकर रहते हैं। बहुधा प्रकट रूप से स्त्रियों को साथ रखते हैं और बहुधा परस्त्रीगमन तथा वेश्यागमन आदि कर चरस के दम मारते हैं। कोई खड़ेश्वरी बन ऊँची भुजा कर लेते हैं, कोई अन्न त्याग कर दूधाधारी बनते हैं, कोई पंचाग्नि तापते हैं, कोई मौन धारण कर लेते हैं तो कोई धूल पर लेटते हैं। इस प्रकार नाना प्रकार के ढोंग रचकर यह धूर्त और पाखंडी, अंधविश्वासी हिन्दू जनता को लूट देश में पाप वृद्धि कर रहे हैं।

हितोपदेश में लिखा है कि परांई स्त्री को माता के समान, अन्य के द्रव्य को मिट्टी के ढेले के समान, सब जीवों की आत्मा अपनी आत्मा के समान जानने वाले पंडित कहे जाने चाहिए। गीता अध्याय 13 श्लोक 42 में लिखा है कि अंतकरणः का निरोध, विचार करना, बाहर भीतर पवित्र, कोमलता, शास्त्रोक्त ज्ञान, अनुभव और विश्वास आदि उत्तम कर्म जिसमें हों उसको ब्राह्मण कहते हैं। तैत्तिरीय उपनिषद् का वाक्य है कि शुद्ध भाव से सत्य कामना, सत्य बोलना, सत्य करना, मन को अधर्म में न जाने देना, ब्रह्म इन्द्रियों को अधर्माचरण से रोकना, शरीर मन व इन्द्रियों से शुभ कर्म करना, वेदादि सत्य विद्याओं को पढ़ना, वेदानुसार आचरण करना आदि धर्मयुक्त कामों का नाम तप है। इन्हीं कर्मों को करने वालों को तपस्वी जानना चाहिए। जो मनुष्य यथावत् परोपकार करना ही कर्तव्य कर्म समझता है वह साधु है। परमेश्वर के पूर्ण ज्ञान होने से जिसको प्रकृति के गुण तथा कार्यों में अरुचि होती है उसे वैरागी कहते हैं। पूर्ण ज्ञानी का नाम महात्मा है। धर्मात्मा, शास्त्रोक्ति विधि का पूर्ण रीति से ज्ञाता, विद्वान्, कुलीन, निर्व्यसनी, सुशील, वेदप्रिय, पूज्यनीय, सर्वोपकारी पुरोहित है। जो सांगोपांग वेदों के शब्द, अर्थ सम्बन्ध तथा क्रिया का जानने वाला, छल कपट रहित, अति प्रेम से सबको विद्या का दाता, तन मन धन से सबका सुख बढ़ाने में तत्पर, निरपेक्ष होकर सत्योपदेष्टा, सर्वहितैषी, धर्मात्मा तथा जितेन्द्रिय हो उसको आचार्य समझें। देवता वह है जो सदा उत्तम कर्म करते हैं। न्याय से धन प्राप्त करने

वाले परोपकारी हैं। पूर्ण विद्वान्, विद्या और सत्यधर्म प्रचार में जो तत्पर रहते हैं, वह उपदेशक हैं। ज्ञानवान वह हैं जो सत्य असत्य जानते हैं। इन सबका हमको पूजा और श्रद्धापूर्वक सत्कार करना चाहिए।

वर्तमान में गुणविहीन नामधारी साधु, सन्त, उपदेशक, तपस्वी, पण्डित बहुतायत से दिखाई देते हैं। इनकी नाना प्रकार के फल, भोजन, वस्त्र और द्रव्यादि से प्रतिदिन पूजा होती है। शिक्षित, बनी निर्धन सभी इनकी सेवा में खड़े रहते हैं। कोई घर से लड़कर, कोई जमा मार कर, कोई पराई स्त्री भगा, कपड़े रंग चिमटा लेकर, हरे कृष्ण, जय सीताराम के भण्डार खोल देते हैं। यदि इनसे कोई कहता है कि आपने विद्या नहीं पढ़ी, आचरण नहीं सुधारा तो क्रोध में आकर कहते हैं, "विद्या पढ़कर क्या होगा हमको संसार से कोई काम नहीं। जंगल में रहना मंगल करना, माई के लाल बने रहें, हमको कमी क्या है, बच्चे माइयाँ आती हैं, सब कुछ भेंट कर जाती हैं और मन इच्छित फल पाती हैं। सेठजी का बच्चा हमारी दुआ से हैं।" इस प्रकार की बातें बनाकर यह अपने सेवकों और सहायकों की संख्या बढ़ाते जाते हैं। मनु ने ऐसे वेद विरोधी व्रत तथा नाना प्रकार के चिह्न धारण करने वाले, निषिद्ध जीविका से जीने वालों को बैडाल वृत्ति वाला बताया है और उनके आदर करने की आज्ञा नहीं दी, फिर दान देना कैसा? परन्तु शोक तो इस बात का है कि हम 'माले मुफ्त दिले बेरहम' की भांति अपनी थैलियों को मुंह खोल इन पाखंडियों का घर भरते चले जा रहे हैं। कुंभ आदि के मेलों पर लाखों बनावटी साधु महात्मा इकट्ठे होते हैं। इनके साथ सोने की झूल और काठी वाले हाथी घोड़े देखने में आते हैं। गृहस्थियों से अधिक धन का प्रभाव इन साधुओं में दृष्टिगत होता है। जिनका धर्म धन त्याग था, जिनकी बड़ाई ज्ञान और शुद्धाचरण से होती थी वहां अब उनमें इन गुणों का नितान्त अभाव है। बड़े-बड़े अखाड़ों में यह चरस के दम लगाते, खाते पीते, मौज उड़ाते हैं। अज्ञानी जनता उनकी पूजा और बड़ाई करती है। क्या इनको दान देना योग्य है? गंगादि नदियों के तट पर, हरिद्वार, काशी, प्रयाग, बद्रीनारायण, द्वारिका, पुष्कर, रामेश्वर आदि में पुण्य के नाम से पंडों को देना, मृत कुटुम्बियों के नाम पर संडों को खिलाना, क्षेत्र खोलना, सुतरेसाईं, मुसलमान फकीर और अघोरियों को दान देना अज्ञान है। यह दान के धन से भट्टीखाने में शराब पीते, भंग, चरस, गांजे का सेवन और नाना प्रकार के कुकर्म करते और मस्त पड़े रहते हैं। उनकी संगति से भारत सन्तान का नाश होता जाता है। गंगादि के तटों पर बहुधा पढ़े लिखे और अनपढ़ स्त्री का भी दान करते हैं। नाममात्र के पुरोहित मुंहमांगी दक्षिणा यजमान से लेकर स्त्री फेर देते हैं। धिक्कार है ऐसे यजमान और पुरोहित पंडों पर जो ऐसे अनुचित कार्यों को करते हुए नहीं लजाते। क्या ऐसे दानों का पाप दाताओं के सिर पर न होगा? हमारे दाताओं और प्रतिगृहीताओं की ऐसी लीलाएँ देख दूसरी जाति और धर्म वाले हमारी मूर्खता पर हंसी उड़ाते हैं और अब भी दान में सुधार नहीं करते।

सूर्यग्रहण, चन्द्रग्रहण के अवसर पर हमारे अज्ञानी धर्माधीश कहते हैं कि इस समय दान देने का विशेष फल होता है। इसका कारण यह बतलाते हैं कि जब विष्णु जी देवताओं को अमृत बांट रहे थे उस समय राहु देवता का रूप धारण उनके साथ बैठ गया और अमृत पी गया। सूर्य, चन्द्रमा ने चुगली खा दी

तो विष्णु ने क्रोध कर चक्र से राहु का सिर काट डाला। राहु अमृत पी चुका था अतः वह मरा नहीं। इसी से राहु सूर्य, चन्द्रमा को जहाँ तहाँ पकड़ लेता है, फिर जब भारतवासी भंगी आदि को दान देते हैं तो वे राहु से छुटकारा पाते हैं। सूर्य चन्द्रमा उन लोगों को, जो दान देते हैं, आशीर्वाद देते हैं कि तुम्हारा भला हो जो हमको छुड़ाया। यह कथा मनगढ़न्त है। ग्रहलाघव में लिखा है 'छाद्यत्यर्क मिन्दुर्विध भूमिधः' जिस समय पृथवी घूमती हुई सूर्य चन्द्रमा के बीच आ जाती है तब पृथ्वी की छाया चन्द्रमा पर पड़ती है और चन्द्रग्रहण होता है। जब सूर्य तथा पृथ्वी के बीच चन्द्रमा आ जाता है तब चन्द्रमा की छाया पृथ्वी पर पड़ती है और सूर्य कटता सा दिखाई देता है, इसको सूर्यग्रहण कहते हैं। अथर्ववेद में लिखा है 'दिविसोमोअविश्रितः', सूर्य के प्रकाश से चन्द्रमा प्रकाशित होता है। अतः भूमि के बीच में आ जाने के चन्द्रमा में अंधकार होने लगता है और वह कटा सा दिखाई देता है। मिथ्या उपदेशों को ग्रहण न कर सत्य असत्य का विचार कर सत्य को अपनाना योग्य है।

मनुस्मृति अध्याय 4 श्लोक 194 में लिखा है कि जिस प्रकार पत्थर की नाव पर चढ़कर मनुष्य जल में डूब जाता है, उसी प्रकार मूर्खदाता तथा प्रतिगृहीता दोनों नरक में डूबते हैं। जो दान कुपात्रों को, निषिद्ध देश काल में दिया जाता है वह तमोगुणी और राक्षसी दान कहाता है। व्यास स्मृति अ0 4 श्लोक 15 में शौच से नष्ट तथा व्रत से विहीन ब्राह्मणों को अन्न तक न देने का आदेश है। शांतिपर्व अध्याय 26 में युधिष्ठिर ने कहा है कि जो धर्मभ्रष्ट लोगों को दान देते हैं वे सौ वर्ष तक परलोक में पुरीष भोजन करते हैं। पदमपुराण में लिखा है कि जो मनुष्य तम्बाकू पीने वाले ब्राह्मण को दान देता है वह नरक को जाता है और लेने वाला ब्राह्मण गांव का सुअर होता है। जिस प्रकार बन्द कूप में पानी तथा कुत्ते के चमड़े में दूध बिगड़ जाता है उसी भांति कुपात्र को दान देने से कोई लाभ नहीं होता। हमारे मन्दिरों में सैकड़ों रुपये रोज का भोग लगता है। इस भोग से क्या परमार्थ होता है?

उपरोक्त सब बातों का सारांश यह है कि दान अवश्य देना चाहिए पर देना चाहिए देश, काल और पात्र को देखकर। दान की दुर्गति करने से दानदाता की दुर्गति होती है। बिना जाने हुए किसी साधु संन्यासी को दान न दो, हट्टे कट्टे भिखारी को भीख मत डालो, जिन लोगों का कर्म मांगना है उनको दान न दो, तीर्थों में रुपया बर्बाद न करो, उस ब्राह्मण को गाय न दो जो उसे बेच देगा। अपना पैसा ऐसे काम में लगाओ जिससे लोग कुकर्म से बच सकें और देश, जाति तथा धर्म की उन्नति एवं सुधार हो। कुछ अच्छे दान निम्नांकित हैं–

(1) विद्या दान सबसे श्रेष्ठ दान है। अन्य दानों का फल अन्य योनियों में मिलता है परन्तु इस दान का फल इसी योनि में मिल जाता है। इस एक दान में अन्य दान भी आ जाते हैं, जैसे विद्यार्थियों की जल की आवश्यकता को दूर करने के लिए कूपादि बनवा कर जल दान, भोजन प्रबन्ध कर अन्नदान, निर्धन विद्यार्थियों के वस्त्रों का प्रबन्ध कर वस्त्र दान, विद्यालय बनवाकर घर दान और पाठशालायें बनवाने के निमित्त भूमि देखकर पृथ्वीदान।

(2) अनाथ और विधवाओं को सहायता करना। हिन्दू जाति की हजारों विधवायें और अनाथ सहायता न मिलने के कारण मुसलमान और ईसाई हो जाते हैं। उनका विधर्मी हो जाना हिन्दुओं के लिए कलंक है। इनकी हमें भरसक सहायता करना चाहिए।

(3) टूट्टू फूटे कूप तालाबादि जलाशयों की मरम्मत कराना तथा ऐसे स्थानों पर बनवाना जहाँ जल के बिना मनुष्य, पशु एवं पक्षियों को कष्ट हो। ग्रीष्म ऋतु में प्याऊ लगवाना।

(4) राज्य पर विपत्ति हो तो उसकी सहायता करना।

(5) जाति और धर्म पर संकट पड़ने पर तन-मन-धन अर्पित करना।

(6) शरणागत की, जो आपत्ति विपत्ति पड़ने पर शरण में आया हो, सहायता करना। डाकू, चोर, बदमाश, राज्य अपराधी, कुकर्मी, अधर्मी, शरणागत की सहायता करना उचित नहीं है।

(7) गौ, दीन विद्वान, धर्मनिष्ठ ब्राह्मणों की सेवा और सत्कार करना।

(8) देवगृहों को, जहाँ गुणयुक्त महात्मा, पंडित, ब्राह्मण और संन्यासी निवास करते हों और वास्तविक धर्मोपदेश होता हो, दान देना।

(9) धर्मप्रचार, विधर्मियों को अपने धर्म में सम्मिलित करने के लिए और जाति संगठन के लिए दान देना।

(10) दीन, रोगी, कुटुम्बी, सम्बन्धी तथा पड़ोसियों की सहायता करना।

(11) धर्मशाला बनवाना।

(12) दीनों की पुत्रियों का विवाह करना।

(13) दीनों का मृत संस्कार करना।

(14) यज्ञ करवाना।

(15) देश, धर्म और जाति के सुधार तथा शिक्षा प्रसार के कार्यों में दान करना।

दान श्रद्धापूर्वक, शुद्ध मन से, कर्तव्य समझ कर, फल की आशा किए बिना, अपनी सामर्थ्यानुसार करना चाहिए। ❁

नीति वचन

मृत्यु से भी कठिन है, विषयों से अलगाव।
करे देव का नाश भी, अति विषयों का चाव॥

x x x

बुद्धिमान नर मूढ़ को, ऐसे देता छोड़।
जैसे गन्दे कूप से, प्यासा ले मुँह मोड़॥

गतांक से आगे–

आध्यात्मिक चर्चा

लेखक: हरिशंकर अग्निहोत्री, आगरा (उ0 प्र0)

पिछली चर्चाओं में हमने समझा कि कर्मों का फल अवश्य ही भोगना पड़ता है। परमेश्वर हमें कर्मों के फल के रूप में जाति, आयु भोग प्रदान करता है। आज हम आयु, जाति और भोग पर कुछ विस्तार से चर्चा करेंगें।

समाज में आयु के बारे में कुछ ऐसा प्रचार हुआ है कि आयु जन्म के साथ की निर्धारित हो जाती है, आयु न तो घटती है और न ही बढ़ी है, जिसकी मृत्यु जब होनी होती है तब ही होती है।

यदि हम उपरोक्त कथन को सही माने तो अनेक दोष उत्पन्न हो जाते हैं। जैसे–जब मृत्यु निर्धारित समय पर होनी ही है तो आयुष्मान भव, जीवेम शरदः शतम् आदि का क्या औचित्य रह जायेगा। यदि कोई किसी को मार दे तो मारने वाला दोषी क्यों कर होगा? क्योंकि मरने वाले की तो मृत्यु होनी ही थी। ऐसे ही अनेक प्रश्न उपस्थित होंगे।

वैदिक सिद्धान्त के आधार पर मृत्यु तो निश्चित होती ही है लेकिन कब होती है या कब होगी यह निर्धारित नहीं होता। आयु को घटाया और बढ़ाया भी जा सकता है।

इस पर कुछ तर्क पूर्ण चर्चा करते हैं जैसा कि योग दर्शन में कहा है कि आयु कर्म के आधार पर प्राप्त होती है तथा दूसरी बात यह है कि कुछ कर्मों का फल वर्तमान जन्म में प्राप्त होता है और कुछ कर्मों का फल अगले जन्म में भी प्राप्त होता है। (यहाँ यह बात ध्यान देने योग्य है कि सभी कर्मों के फल का निर्णय मृत्यु के बाद ही नहीं होता बल्कि कुछ कर्मों का फल जीवन चलते भी प्राप्त हो जाता है।) अब इन दोनों बातों को साथ–साथ जोड़कर देखते हैं अर्थात् जन्म के समय जो आयु प्राप्त होती है वह पिछले जन्मों के कर्मों का फल है साथ ही इस आयु को वर्तमान के कर्म भी प्रभावित करेंगे। वर्तमान जीवन में किये जाने वाले कुछ कर्म ऐसे भी होते हैं जो आयु को घटा और बढ़ा सकते हैं क्योंकि कुछ कर्म ऐसे होते हैं जो इसी जन्म में करने पर इसी जन्म में आयु देने वाले होते हैं।

इसीलिए वेदों में सौ वर्ष और उससे भी अधिक जीने की बात कही है। आयुर्वेद ऐसा उपवेद है जो आयु पर ही लिखा गया है। आयुर्वेद में अनेक ऋषियों ने आयु को बढ़ाने के लिए शुभ कर्म, अच्छा भोजन, सही नींद, ब्रह्मचर्य का पालन और व्यायाम आदि वर्णन किया है। अर्थात् शुभ कर्म = पुण्य कर्म = वेदोक्त कर्म करके, आयुर्वेद के आधार पर शरीर को स्वस्थ रखने वाला वात–पित्त–कफ को सम रखने वाला भोजन करके, रात्रि में उचित समय से गहरी नींद लेकर, ब्रह्मचर्य के पालन और नित्य व्यायाम–आसन– प्राणायाम आदि करके आयु को बढ़ाया जा सकता है और इसके विपरीत चलकर आयु घट जाती है।

इसी प्रकार भोग के सन्दर्भ में समझना चाहिए अर्थात् जन्म के समय सुख-दुःख के जो साधन मिलते हैं वे पूर्व जन्मों के कर्मों का फल है उन साधनों को भी घटाया और बढ़ाया भी जा सकता है।

यहाँ एक बात बहुत ध्यान देने योग्य है- चोरी, डकैती, अत्याचार, भ्रष्टाचार आदि अनैतिक पापाचरण से प्राप्त धन सुख का साधन नहीं है।

यदि कोई ऐसा प्रश्न करे-समा में देश में चोरी करने वाले, रिश्वत लेने वाले, मिलावट करने वाले, अधिक मुनाफा लेने वाले, झूठी गवाही, असत्य, छल-कपट आदि गलत कार्यों को करके धन, सम्पत्ति इकट्ठी करने व गलत कार्य करने वाले व्यक्ति सुखी दिखाई देते हैं। क्या ईश्वर उनको देखता नहीं है? दण्ड नहीं देता? जब ऐसे गलत कार्य करने वाले सुखी देखे जाते हैं तो धर्म, सदाचार, नैतिकता पर से लोगों का विश्वास ही हट जाता है और अन्य लोग भी ऐसे लोगों का अनुकरण करके उनकी तरह बुरे काम करने लग जाते हैं और इससे सारे समाज, राष्ट्र में भ्रष्टाचार फैल जाता है जो आज हम स्पष्ट देखते हैं।

उपरोक्त प्रश्न के उत्तर में कहा जा सकता है-मनुष्य कर्म करने में स्वतन्त्र है वह अच्छा, बुरा जैसा चाहे अपनी इच्छा से कर सकता है। झूठ, छल-कपट, चोरी, मिलावट, रिश्वत, शोषण, अन्याय आदि के द्वारा वह क्या प्राप्त करेगा? रूपया-पैसा। इन रुपयों से वह अच्छा मकान, गाड़ी, वस्तु, भोजन, मनोरंजन के साधनों को प्राप्त करके भी क्षणिक सुख ही तो पाता है। किन्तु इन साधनों व साधनों के पीछे बुरे कर्मों से प्राप्त धन का जो दोष है, पाप है उसका डंक, विष व उसकी आग उसे अन्दर ही अन्दर चुभती, जलाती रहती है।

महाराज मनु कहा है- **अधर्मेणैधते तावत्ततो भद्राणि पश्यति।**
ततः सपत्नाञ्जयति समूलस्तु विनश्यति।।

मनुष्य (अधर्मेण तावत् एधते) अधर्माचरण के द्वारा पहले पहले उन्नति करता है, (ततः भद्राणि पश्यति) उससे वह अपना कल्याण= सुख-सुविधा-मान-प्रतिष्ठा प्राप्ति होते हुए भी अनुभव करता है, (ततः सपत्नात् जयति) उससे शत्रुओं पर भी बढ़ोत्तरी प्राप्त करता है (तु) किन्तु अन्ततः उस अधर्मकर्ता का (समूलः विनश्यति) जड़ से ही सर्वनाम हो जाता है।

महर्षि दयानन्द सरस्वती जी महाराज सत्यार्थ प्रकाश में इस प्रसंग पर लिखते हैं-जब अधर्मात्मा मनुष्य धर्म की मर्यादा छोड़ (जैसे तालाब के बाँध को तोड़ जल चारों फैल जाता है वैसे) मिथ्याभाषण, कपट, पाखण्ड अर्थात् रक्षा करने वाले वेदों का खण्डन, और विश्वासघात आदि कर्मों से पराये पदार्थों को लेकर, प्रथम बढ़ता है और धनादि ऐश्वर्य से खान, पान, वस्त्र, आभूषण, यान, स्थान, मान, प्रतिष्ठा को प्राप्त होता है, अन्याय से शत्रुओं को भी जीतता है, पश्चात् शीघ्र नष्ट हो जाता है। जैसे जड़ से कटा हुआ वृक्ष नष्ट हो जाता है, वैसे ही अधर्मी नष्ट हो जाता है।

मनुष्य निश्चय करके जाने कि इस संसार में जैसा गाय आदि की सेवा का फल दूध शीघ्र प्राप्त नहीं होता वैसे ही किए हुए अधर्म का फल शीघ्र प्राप्त नहीं होता किन्तु वह किया हुआ अधर्म धीरे-धीरे कर्त्ता के सुखों को रोकता हुआ सुख के मूलों को काट देता है पश्चात् अधर्मी दुख ही देख भोगता है। इसलिए यह कभी नहीं समझना चाहिए कि कर्त्ता का किया हुआ कर्म निष्फल होता है। क्रमश ....

कर्म में नीति–अनीति का विचार

लेखक:– आचार्य वैद्यनाथ शास्त्री

कर्म दो प्रकार का है। इच्छापूर्वक किया हुआ और अनिच्छापूर्वक किया हुआ। इच्छापूर्वक होने वाले कर्म में ही कर्म–मीमांसा का प्रश्न उठता है, अनिच्छापूर्वक किये गये कर्म में नहीं। नीति अनीति अर्थात् कर्त्तव्याकर्त्तव्य का विचार तो सर्वथा इच्छपूर्विका चेष्टा से ही सम्बन्ध रखत ही है। कर्म में नीति क्या है? इस पर थोड़ा सा विचार अपेक्षित है। कर्त्तव्य शब्द का व्यवहार किये जाने वाले कर्म के लिये प्रयुक्त होता था। विशुद्धरूप में कर्त्तव्य कर्म के लिये धर्म और अकरणीय के लिये अधर्म का व्यवहार बहुधा देखा जाता है। धर्म क्या है और अधर्म क्या है? इस विषय का विवेचन एक स्वतन्त्र दर्शन ही है। नीति शब्द संस्कृत का है। इसका प्रयोग संस्कृत–साहित्य में राजनीति के अर्थ में प्रचलित था। कर्त्तव्याकर्त्तव्य का विवेचन संस्कृत में धर्मशास्त्र के नाम से गृहीत था। आज भी नीति का अर्थ साधारण व्यक्ति राजनीति लेते हैं। जब कोई यह व्यवहार करता है कि अमुक व्यक्ति तो नीति चलता है तो अभिप्राय राजनीति अथवा चालबाजी से ही रहता है। परन्तु विज्ञजन नीति शब्द में ही कर्तव्य और सदाचार अथवा कर्त्तव्य विचार का समावेश मानते हैं। इसलिये वर्तमान समय में दार्शनिक दृष्टि से कर्तव्य, सदाचार, धर्मा आदि के लिये नीति का ही व्यवहार किया जाता है। यहाँ पर भी नीति से ही अर्थ अभिप्रेत है। नीति के विषय में ऊहापोह करते हुये विचारक का ध्यान नीति मीमांसादर्शन की ओर स्वभावतः आकृष्ट होता है। इस विज्ञान का मनोविज्ञान और अध्यात्म विज्ञान से सम्बन्ध माना जाता है। आजकल कुछ विचारक इसे स्वतन्त्र कहने का साहस करने लगे हैं। नीति–मीमांसा–दर्शन का सम्बन्ध वास्तव में यदि देखा जावे तो मानव के नैतिक व्यवहार और कर्तव्य से है। इसकाक प्रधान कार्य मानव की कृतज्ञता, परिस्थिति, सहज सामर्थ्य तथा प्रतिबन्धों के अनुसार तथ्य और अतथ्य का निर्णय करना है। यह सच्चरित्रता के विषय को प्रकाश में लाता है। हम सभी भला, बुरा, सही और गलत आदि शब्दों का व्यवहार करते हैं। परन्तु इनका वास्तविक अर्थ क्या है और जब इनका उच्चारण करते हैं तो उससे क्या अभिप्रेत है, इनका विचार इस शास्त्र का आवश्यक अंग है। यह भला और सत्य के सभी अंगों पर प्रकाश डालता है। कर्तव्यमीमांसा–दर्शन के विचार्य विषय संक्षेप में तीन वर्गों में विभाजित किये जा सकते हैं। प्रथम विभाग इस धारणा से सम्बन्ध रखता है कि वस्तुतः भला, बुरा और उचित, अनुचित तथा सही और गलत क्या है? इनका वास्तविक स्वभाव क्या है। जब लोग किसी वस्तु एवं कर्म को सत्य अथवा मिथ्या, गलत अथवा सही, भली अथवा बुरी कहते हैं तो उसका क्या प्रयोजन रहता है–इत्यादि। दूसरा विभाग यह बतलाता है कि यह मान लिया जावे कि सत्य असत्य, कर्तव्याकर्तव्य का निर्णय हो भी जावे परन्तु वह निर्णय हमारे विचार में किस प्रकार आता है और हमअपने विचारशक्ति के किस भाग से

उसका समुचित निर्णय कर लेते हैं। वह निर्णय क्या है? जिसको हम निश्चित नैतिक निर्णय कह सकते हैं। तीसरा वर्ग नीति–मीमांसा का है नीतिनिर्णय के साधन अथवा मानदण्ड एवं स्तर का निर्धारण करना। हमें मान लिया कि यह भी पता चल जावे कि अमुक कर्म उचित या अनुचित है परन्तु उसके औचित्य अनौचित्य का निर्णय किस मानदण्ड से होता है, ऐसे कुछ आधारभूत सिद्धान्तों अथवा साधनों का निर्धारण करना आवश्यक है। बिना कोई ऐसा आधारस्तम्भ बनाये हुए हम कैसे कह सकते हैं कि यह कर्म उचित अथवा यह कर्म अनुचित है। नीति–मीमांसा–दर्शन का कर्म ऐसे निर्देशक सिद्धान्तों, जिनसे सत्यासत्य भले बुरे का निर्णय हो, निर्धारण करना भी है। क्योंकि वह नीति विषय के सिद्धान्तों के स्थापन का विज्ञान है। जहाँ तक साधारण चेष्टाओं का सम्बन्ध है कोई सिद्धान्त निर्धारण की आवश्यकता ही नहीं। परन्तु जिन चेष्टाओं के साथ 'चाहिये' अथवा 'नहीं' चाहिये'' का सम्बन्ध है वहां पर सिद्धान्त निर्धारण परमावश्यक है कर्तव्यविज्ञान को वास्तव में यदि देखा जावे तो ''चाहिये'' का विज्ञान है। इस चाहिये के ही अर्थ को संस्कृत के 'तव्य' और 'अनीयर' प्रत्यय व्यक्त करते हैं। अंग्रेजी का Outht, due आदि भी इसी भाव का व्यक्तीकरण करते हैं। ''चाहिये'' देखने में बहुत साधारण है परन्तु अर्थ और भाव की दृष्टि से बहुत ही व्यापक हैं। इसमें, बाध्य होना, ठीक, न्याय, उचित, समर्थ होने, और संभाव्य होने के भाव छिपे हुए है। जब किसी कर्म के साथ ''चाहिए'' लग जाता है तो उससे यह भाव निकलता है कि इस कर्म के करने में व्यक्ति बाध्य है। जहाँ तक कर्म का सम्बन्ध है वह ठीक, न्यायसंगत, औचित्यपूर्ण है। साथ ही साथ करने की बाध्यता होने पर भी वह करने वाले की सामर्थ्य के बाहर नहीं तथा वह करने में सम्भव है। आंग्लभाषा में Outht के अन्दर भी कुछ यही भाव है। उसका due पद जिससे duty बनता है भी बहुत व्यापक है। किसी Action के साथ के Outht प्रयोग में उसके right, due, obliged to, और Just होने का भाव पाया जाता है। इन्हीं का प्राय: कर्तव्याकर्त्तव्य निर्णय करते समय विचार भी किया जाता है। इन्हीं के सांगोपांग विचार का नाम कर्तव्य–विचार–विज्ञान भी है। इस ''चाहिये'' को किस प्रकार निर्णीत किया जावे और ''नहीं चाहिये'' को कैसे पृथक् किया जावे इसके विचार में विविध दृष्टि में बन जाती हैं। विचारक के दृष्टिभेद से विचार में भी भेद आ जाते हैं। यह सर्वसाधारण को ज्ञात है कि वही कार्य करना चाहिए जो भला हो। परन्तु जब किसी विज्ञ से विज्ञ व्यक्ति को यह कह दिया जावे कि जीवन के प्रत्येक क्षण में प्रत्येक मनुष्य और प्रत्येक समाज के कार्यों में वह सोचकर 'चाहिए' और 'नहीं चाहिए' लगा देवे तो उसके सामने एक विकट समस्या उत्पन्न हो जाती है। वह हर अंचलों पर अपनी विचारधारा को दौड़ाता है, समाधान सोचता है, फिर भी सन्देह में पड़ जाता है कि क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए। यही कारण है कि अनेक समयों में अनेक व्यक्तियों को कर्तव्याकर्तव्य के विषय में व्यामोह पैदा हुआ। भारत में गीता और योरूप में शेक्सपियरकृत हैमलेट और 'कोरियोलेसस' नाटक इसी के उदाहरण हैं। ' चाहिये' की सूक्ष्मभूत तत्व वस्तु का विचार सभी जातियों में पाया जाता है। यद्यपि जो बात एक जाति में नीति की दृष्टि से चालू है वही दूसरी में निषिद्ध है, फिर भी किन्हीं मूल–सिद्धान्तो में ऐक्य भी है।

–(शेष अगले अंक में)

आर्य वीर दल उ0 प्र0 के आह्वान पर

उ0 प्र0 के 32 स्थानों पर 200 कुण्डीय महायज्ञ एवं ऋषि चर्चा सम्मेलन के साथ 200 आर्यवीर प्रशिक्षण शिविर 2023–24

क्र0	जिला/कस्बा	दिनांक	कार्य स्थल	मुख्य व्यवस्थापक	मो0 नम्बर
1.	मथुरा	17-09-2023	श्री बृज कृषक इन्टर कालेज टेटीगांव मथुरा	श्री राममुनि (लाला रामबिहारी) आर्य)	9675462421
				पं0 विपिनबिहारी आर्य	9760734747
2.	बुलन्दशहर	24;09-2023	रामलीला मैदान डिवाई बुलन्दशहर	श्री मवाशी सिंह आर्य	9758741822
				श्री सुभाष आर्य	8859845925
3.	मथुरा	27-09-2023	आर. के. फार्म मथुरा रोड बाजना	श्री राजवीर वैद्य जी	9675861800
				श्री लोकेन्द्र वर्मा जी	9808432882
				श्री कालीचरन आर्य	7820020519
4.	सहारनपुर	01-10-2023	अग्रवाल धर्मशाला सहारनपुर	श्री अवनीश आर्य	7417015335
				श्री प्रियव्रत शास्त्री	8439549383
5.	शाहजहाँपुर	08-10-2023	आर्य समाज टाउन हॉल शाहजहाँपुर	श्री बलवील शास्त्री	8707851309
				श्री रामवीर देव शास्त्री	9453701173
6.	अलीगढ़	15-10-2023	प्रांतीय सम्मेलन प्रदर्शनी मैदान जी टी रोड अलीगढ़	श्री आचार्य स्वदेश जी मथुरा	9456811519
				श्री रविकर आर्य अलीगढ़	9760003974
7.	गौतमबुद्धनगर	29-10-2023	गुरुकुल मुरसदपुर ग्र. नोएडा	श्री देवमुनि	9871515971
				श्री वीरेश भाटी	9818664888
				श्री सागर आर्य	8800928704
8.	सम्भल	05-11-2023	बाबूराम डिग्री कालेज बबराला	श्री दयाशंकर आर्य	8958217005
				श्री यशपाल शास्त्री	7505502031

9.	कासगंज	08-11-2023	सुमन्त कुमार माहेश्वरी इन्टर कालेज, कासगंज	श्री सुकान्त आर्य	9219608327
10	मैनपुरी	10-11-2023	विरजानन्द विद्यापीठ रूरिया मैनपुरी	श्री महेन्द्र सिंह आर्य	9927479245
				श्री स्वामी परमानन्द	7060135413
11	औरैया	19-11-2023	आर्य समाज मन्दिर, औरैया	डाक्टर सर्वेश आर्य	9045490690
				श्री देवेश आर्य	8279819038
				श्री राम लखन आर्य	9634112619
12	हमीरपुर	26-11-2023	पलानी मैदान स्टेशन रोड	डॉ0 विवेक आर्य	9580530691
			भरूआ सुमेरपुर हमीरपुर	श्री आचार्य दिनेशचन्द्र आर्य	8840417520
13	फतेहपुर	27-11-2023	जनता वैदिक इन्टर कालेज ओंग फतेहपुर	श्री चन्द्र आर्य	9559157712
14	गोण्डा	03-12-2023	शहीदे आजम भगतसिंह इन्टर कालेज गोण्डा	श्री विनोद आर्य	9839091545
				श्री अशोक तिवारी	9452690942
				श्री चन्द्रकेतू आर्य	7080339924
15	अम्बेडकरनगर	10-12-2023	महर्षि दयानन्द इन्टर कालेज	श्री आनन्द बाबू आर्य	9331866618
	टांडा		टांडा अम्बेडकरनगर	श्री वीरेन्द्र आर्य	9415460200
16	आजमगढ़	17-12-2023	चौक बैसाली इन्टर कालेज	डॉ0 राजेन्द्र मुनि	8887540629
			आजमगढ़	श्री सन्तोष आर्य	8303810244
17	गोरखपुर	19-12-2023	जेल परिषद बिस्मिल स्मारक	श्री प्रह्लाद आर्य	9265357581
			गोरखपुर	श्री महेन्द्र सिंह आर्य	9506300132
18	गजीपुर	24-12-2023	लंका मैदान गजीपुर	श्री दिलीप वर्मा	7007372145
				श्री धर्मेन्द्र आर्य	6307761042
				श्री संतोष आर्य	8090451535

19	लखनऊ	25-12-2023	डी. ए. वी. डिग्री कालेज लखनऊ	श्री आचार्य अखिलेश मेधावी	8948510257
				डॉ0 सत्यकाम आर्य	6394922947
				श्री स्वामी वेदामृतानन्द	9450365777
				श्री विश्वव्रत शास्त्री	8318937238
20	उन्नाव	26-12-2023	रामलीला मैदान वांगरमऊ उन्नाव	श्री रामगोपाल गुप्ता	8172853617
21	मिर्जापुर	30-12-2023	जनता इन्टर कालेज मिर्जापुर	श्री सत्यनारायण आर्य	9450613423
				श्री डॉ0 झंगर सिंह	9936277676
22	बस्ती	31-12-2023	होटल बालाजी प्रकाश बस्ती	श्री ओमप्रकाश आर्य	9918300676
				श्री देवव्रत आर्य	9721071742
				श्री गरणध्वज पांडे	7619070002
23	मेरठ	07-01-2024	संजय गांधी पीजी कालेज सरूरपुर खुर्द मेरठ	डॉ0 कपिल मलिक	9950287188
				श्री विद्यासागर आर्य	6395051413
24	मुजफ्फरनगर	12-01-2024	ऋषि भूमि इन्टर कालेज मुजफ्फरनगर	श्री गौरव आर्य	8923244072
				आचार्य संदीप आर्य वैदिक	9720219952
25	कन्नौज	20-01-2024	ऋषि भूमि इन्टर कालेज सौरिख कन्नौज	श्री उदयसिंह आर्य	9452337124
				श्री अवधेश गुप्ता	9838161314
26	फिरोजाबाद	21-01-2024	डिवाइन इन्टर नेशनल स्कूल सिरसागंज, फिरोजाबाद	श्री देवशरण आर्य	7060232323
				श्री नवीन शास्त्री	9758648465
27	आगरा	28-01-2024	एन. सी. वैदिक इन्टर कालेज आगरा	श्री आचार्य हरिशंकर शास्त्री	9897060822
				श्री वीरेन्द्र कनवर	9897007181
				श्री अनुज आर्य	9927533335
28	हाथरस	04-02-2024	कन्या गुरुकुल सासनी हाथरस	डॉ0 पवित्रा जी आर्य	9258040119
29	झाँसी	11-02-2024	आर्य समाज सदर बाजार झाँसी	श्री अशोक सूरी	9415055981

				श्री शिरोमणि आर्य	9519228869
30	प्रयागराज	12-02-2024	कुम्भ क्षेत्र प्रयागराज नागबासुकी मन्दिर दारागंज	श्री प्रमोद आर्य	8299417972
				श्री राम मूरत आर्य	9936207385
31	एटा	13-02-2024	कासगंज रोड गुरुकुल एटा	श्री दिनेश बन्धु	9837632552
				श्री प्रताप आर्य	9412305098
32	सहारनपुर	25-02-2024	गुरुकुल उग्रपुर, सहारनपुर	आचार्य अरविन्द आर्य	9761784730
				स्वामी सुतिक्स	8630960463
33	कानपुर	17-03-2024	मोतीझील मैदान कानपुर	आचार्य आनन्द आर्य	7985268048
				डॉ0 उदयवीर आर्य	9044922916

(मुख्य संरक्षक)	(प्रांतीय संचालक)	(महामंत्री)	(संगठन मंत्री)	(कोषाध्यक्ष)
आचार्य स्वदेश जी	आचार्य पंकज आर्य	मा0 कृष्णपाल आर्य	डॉ0 हरिसिंह आर्य	आचार्य जितेन्द्र शर्मा

विशेष

अन्य जनपद, समाज या व्यक्ति विशेष भी महर्षि दयानन्द जी महाराज की 200 वीं जयन्ती पर 200 कुण्डीय यज्ञ का आयोजन करने का भाव रखते हैं वे प्रांतीय संचालक श्री पंकज जी आर्य से सम्पर्क कर सकते हैं। आर्यवीर दल आपका सर्वात्मना सहयोग कर कार्यक्रम को सफल बनायेगा।

सत्साहित्य का प्रचार-प्रसार करना राष्ट्र की सर्वोत्तम सेवा है।

चला लेते हैं। जो कुर्त्ता सुनील ने आपको दिया है वह अधिक फटा नहीं है फिर शरद ऋतु आ रही है मैं उसे कोट के नीचे पहन लिया करूँगा। कौन अन्दर देखता है कि कुर्त्ता नया है या पुराना है शरीर की रक्षा ही तो करनी है। धन्य हैं मितव्ययता और देश के प्रति संवेदन शीलता काश ! हमारे देश के नेता इस आदर्श को अपना लेते तो देश स्वर्ग बन जाता। इतना भ्रष्टाचार ही नहीं होता क्योंकि छोटे लोग बड़ों को देखकर अपना आचरण करते हैं। माननीय शास्त्री जी का यह देवता स्वरूप ही उन्हें भारत के सर्वोच्चपद पर प्रतिस्थापित कर गया।

एक अन्य घटना उनके सुपुत्र श्री सुनील शास्त्री ने बताई कि हम प्रधान मन्त्री के पुत्र होते हुए भी विद्यालय टम्पू में बैठकर ही जाया करते थे। पिताजी कभी सरकारी वाहन का प्रयोग हमें नहीं करने देते थे।

एक बार हमारी माता जी ने कहा कि आप इतने बड़े पद पर हैं बच्चों की सुरक्षा भी करनी है अतः इस प्रकार टम्पू पर विद्यालय भेजना असुरक्षित है। आप सरकारी वाहन का प्रयोग करने नहीं देते। तो अपने प्रयोग के लिए कोई कार खरीद लो। बच्चों को विद्यालय आदि ले जाने के काम आ जाया करे। तब पिताजी बोले कि मेरे पास इतना रुपया नहीं है पर आप कह रही हैं तो प्रयास करूंगा बैंक से लोन पर गाड़ी आ जाये। बैंक से लोन हो गया उन्होंने एक कार खरीद ली। कुछ दिनों बाद उनका निधन हो गया समाचार पत्रों में यह सूचना भी छपी कि शास्त्री जी गाड़ी का लोन बकाया है। अब उनका परिवार बैंक कर्ज कैसे चुकायेगा इससे सारा देश स्तब्ध रह गया। शास्त्री जी से सहानुभूति रखने वाले अनेकों धनाढ्य लोगों ने प्रस्ताव भेजा कि गाड़ी का बैंक कर्ज हम चुका देंगे पर श्री शास्त्री की पत्नी ने किसी से कुछ भी लेना स्वीकार नहीं किया उन्हीं पारिवारिक परिस्थितयों में जीवन यापन किया और गाड़ी का लोन भी भरा।

भारत को महान् भारत माननीय श्री शास्त्री जी जैसे उच्च आदर्शयुक्त महापुरुषों के कारण ही कहा जाता है। दुर्भाग्य है कि आज भारत माता की गोद ऐसे सुपुत्रों से सूनी है। चारों ओर वैभव बढ़ने के साथ ही अशान्ति और भ्रष्टाचार का साम्राज्य व्याप्त है। 2अक्टूबर के पावन दिवस पर हम सब भी संकल्प करें कि माननीय लाल बहादुर शास्त्री से प्रेरणा लेकर हम भी सम्पूर्ण भारत ही नहीं अपितु सम्पूर्ण मानवता को अपने जीवन में संसार के स्वल्प लाभ लेकर कई गुना वापस करने का प्रयास करेंगे और इस अवसर पर संसार के तत्वज्ञान को समझकर प्राणी मात्र के सुख की कामना से अपना जीवन जियेंगे और पूरा प्रयत्न अपने देश की सेवा में तन-मन-धन लगाने का करेंगे अन्यथा पशु तुल्य स्वार्थ में जीवन बिताना अपना और देश का सर्वनाश करना है। आदरणीय शास्त्री जी के प्रति कोटिशः कृतज्ञभाव सहित श्रद्धा सुमन अर्पित करता हूँ। ❁

सत्य प्रकाशन मथुरा के अनमोल प्रकाशन

शुद्ध रामायण (सजिल्द)	220.00	आर्यों की दिनचर्या	30.00	नमस्ते ही क्यों	10.00
शुद्ध रामायण (अजिल्द)	170.00	चार मित्रों की बातें	20.00	आदर्श पत्नी	10.00
योग दर्शन	150.00	भारतीय संस्कृति के तीन प्रतीक	20.00	ब्रजभूमि और कृष्ण	8.00
शंकर सर्वस्व	120.00	मील का पत्थर	20.00	सच्चे गुच्छे	8.00
मानस पीयूष (रामचरित मानस)	100.00	भ्रांति दर्शन	20.00	मृतक भोज और श्राद्ध तर्पण	8.00
शुद्ध कृष्णायण	80.00	शान्ता	20.00	भागवत के नमकीन चुटकुले	8.00
नित्य कर्म विधि	70.00	संध्या रहस्य	20.00	मानव तू मानव बन	8.00
शुद्ध हनुमच्चरित (प्रेस में)		गीता तत्व दर्शन	20.00	गायत्री गौरव	5.00
वैराग्य दिवाकर	50.00	गृहस्थ जीवन रहस्य	20.00	सफल व्यक्तित्व	5.00
वैदिक संध्या विधि	50.00	श्रीमद् भगवत गीता	20.00	जीजा साले की बातें	5.00
दो मित्रों की बातें	50.00	दयानन्द और विवेकानन्द	15.00	पंचाग के गुलाम	5.00
दो बहिनों की बातें	50.00	शुद्ध सत्यनारायण कथा	15.00	सर्प विष उपचार	4.00
विदुर नीति	40.00	महाभारत के कृष्ण	15.00	चूहे की कहानी	4.00
वैदिक स्वर्ग की झांकियाँ	40.00	महिला गीतांजलि	15.00	सत्यार्थ प्रकाश मेरी दृष्टि में	4.00
चाणक्य नीति	40.00	इतिहास के स्वर्णिम पृष्ठ	12.00	दयानन्द की दया	3.00
महाभारत के प्रेरक प्रसंग	40.00	बाल मनुस्मृति	12.00	शंकराचार्य और मूर्ति पूजा	3.00
वेद प्रभा	30.00	ओंकार उपासना	12.00	शांति पथ	2.00
शान्ति कथा (प्रेस में)		पुराणों के कृष्ण	12.00	सुमंगली (प्रेस में)	
भारत और मूर्ति पूजा	30.00	दादी पोती की बातें	10.00	बाल सत्यार्थ प्रकाश (प्रेस में)	
यज्ञमय जीवन	30.00	दण्डी जी का जीवन पथ	10.00		

आवश्यक सूचना

1. पाठकगण वर्ष 2023 के लिये वार्षिक शुल्क 200/- रूपये अविलम्ब भिजवायें तथा पन्द्रह वर्ष की सदस्यता हेतु 2100/- भिजवायें।
2. पत्रिका भेजने की तारीख प्रतिमाह 7 व 14 है, कृपया ध्यान रखें।

बुक-पोस्ट
छपी पुस्तक/पुस्तिका

सेवा में,

....

....

....

....

.... पिन कोड ....

पत्र व्यवहार का पता :-
व्यवस्थापक - कन्हैयालाल आर्य
सत्य प्रकाशन
डाकघर- गायत्री तपोभूमि, वृन्दावन मार्ग
(आचार्य प्रेमभिक्षु मार्ग), मसानी चौराहे के पास,
मथुरा (उ० प्र०) 281003
मोबा. 9759804182

Yogendra # 9927136600

मुद्रक : [illegible] आचार्य स्वदेश के लिए मित्तल कम्प्यूटर [illegible], वृन्दावन रोड, मथुरा में छपकर सत्य प्रकाशन मथुरा से प्रकाशित